मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 108 ● वर्ष 12, अंक 3 ● मई 2022 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

सबसे ताक़तवर कम्पनियों में से एक को हराकर अमेज़न के मज़दूरों ने कैसे बनायी अपनी यूनियन 6

ऑटो सेक्टर के मज़दूरों के लिए कुछ ज़रूरी सबक़ और भविष्य के लिए एक प्रस्ताव 11

शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी 14-15

मई दिवस कोई रस्म नहीं, दुनियाभर के मज़दूरों के संघर्ष की जीवित परम्परा है

मई दिवस को रस्मअदायगी बनाने की संशोधनवादी व पूँजीवादी ट्रेड यूनियनों की साज़िश को नाकाम करो

मई दिवस को मज़दूर वर्ग के जुझारू संघर्ष की नयी शुरुआत का मौक़ा बनाओ!

मई दिवस का नाम हम सभी जानते हैं। हममें से कुछ हैं जो 1 मई, यानी मज़दूर दिवस या मई दिवस, के पीछे मौजूद गौरवशाली इतिहास से भी परिचित हैं। लेकिन कई ऐसे भी हैं, जो कि इस इतिहास से परिचित नहीं हैं। यह भी एक त्रासदी है कि हम मज़दूर अपने ही तेजस्वी पुरखों के महान संघर्षों और क़ुर्बानियों से नावाक़िफ़ हैं। जो मई दिवस की महान अन्तरराष्ट्रीय विरासत से परिचित हैं, वे भी आज इसे एक रस्मअदायगी क़वायदों में डूबता देख रहे हैं। कहीं न कहीं हमारे जीवन की तकलीफ़ों में हम भी जाने-अनजाने इसे रस्मअदायगी ही मान चुके हैं। यह मज़दूर वर्ग के लिए बहुत ख़तरनाक बात है। क्यों? ज़रा उन हुक्मरानों पर निगाह डालिए जो आज हम पर हुकूमत कर रहे हैं। यानी हमारे देश के पूँजीपति, धन्नासेठ और अमीरज़ादे। वे अपने वर्ग के नायकों को कभी नहीं भूलते। वे अपने वर्ग के प्रतीकों को कभी नहीं भूलते। हर वर्ष नियम से गाँधी, नेहरू, पटेल, शास्त्री,

सम्पादक मण्डल

इन्दिरा से लेकर फ़ासीवादियों के गुरू गोलवलकर, हेडगेवार, और देवरस से लेकर अटल बिहारी वाजपेयी, दीन दयाल उपाध्याय आदि की जयन्तियाँ मनायी जाती हैं। टेलीविज़न, रेडियो और अख़बार इनके प्रचार में लग जाते हैं। हमें भी यक़ीन दिला दिया जाता है कि पूँजीपतियों और उनके पूरे वर्ग के ये नायक व प्रतीक हमारे और पूरे देश की जनता के भी नायक व प्रतीक हैं। दूसरे शब्दों में, हम अपने ही वर्ग शत्रुओं के नायकों व प्रतीकों को अपने नायक और प्रतीक मान बैठते हैं।

अपने नायकों, प्रतीकों और विरासत को ज़िन्दा रखना हर वर्ग के लिए बेहद ज़रूरी होता है। उसके बिना न तो कोई वर्ग अपने शासन को क़ायम रख सकता है और न ही कोई वर्ग अपने शासन को स्थापित करने की उम्मीद कर सकता है। सर्वहारा वर्ग समाजवादी क्रान्ति के ज़रिए मज़दूर वर्ग की सत्ता क़ायम करने की उम्मीद नहीं कर सकता है, यदि वह अपने नायकों, प्रतीकों और विरासत से कटा हुआ हो। अपने अतीत की जीती गयी और हारी गयी लड़ाइयों से सबक़ लेकर ही कोई वर्ग अपने भविष्य की लड़ाइयों को लड़ सकता है। आज पूँजीपति वर्ग शासन कर रहा है क्योंकि वह एक राजनीतिक वर्ग के रूप में, यानी एक ऐसे वर्ग के रूप में अपने आपको संगठित करने में कामयाब रहा

(पेज 9 पर जारी)

कोरोना से हुई मौतों पर विश्व स्वास्थ्य संगठन की रपट ने खोली पोल

मोदी सरकार के निकम्मेपन और लापरवाही ने भारत में 47 लाख लोगों की जान ली

– सुजय प्रकाश

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रपट के अनुसार कोविड महामारी के कारण दुनियाभर में क़रीब डेढ़ करोड़ लोगों की मौत हुई। इनमें से एक तिहाई, यानी 47.4 लाख लोग अकेले भारत में मरे। भारत के आम लोग अभी वह दिल तोड़ देने वाला दृश्य भूले नहीं हैं, जिसमें नदियों में गुमनाम लाशें बह रही थीं, कुत्ते और सियार इन लाशों को खा रहे थे और श्मशान घाटों व विद्युत शवदाहगृहों के बाहर लोग मरने वाले अपने प्रियजनों की लाशें लिये लाइनों में खड़े थे। ख़ास तौर पर, मोदी सरकार और योगी सरकार ने कोविड महामारी की पहली और दूसरी लहर के दौरान पहचान करने, क्वारण्टाइन करने, और उपचार करने की बजाय ताली और थाली बजाने और अपने झूठे प्रचार पर करोड़ों-करोड़ रुपये ख़र्च किये। अन्य राज्य सरकारों ने भी इस मायने में भयंकर लापरवाही का परिचय दिया। इसके अलावा, मोदी-योगी की फ़ासीवादी जोड़ी ने मरने वालों की असली संख्या को छिपाने के लिए हर तरकीब अपनायी। उत्तर प्रदेश की योगी सरकार ने तो अस्पतालों के प्रशासनों को निर्देश दे दिया था कि मृत्यु प्रमाणपत्र पर मृत्यु का कारण कोविड न बताया जाये। जो निजी अस्पताल मृत्यु का कारण कोविड बता रहे थे, उनके लाइसेंस रद्द किये जा रहे थे और उनके डॉक्टरों को जेल भेजा जा रहा था। लेकिन मृत्यु की सच्चाई को भला कैसे छिपाया जा सकता था? अन्ततः लाशें नदियों और नालों में बहती हुई मिल रही थीं और श्मशानों में दाह संस्कार के लिए लकड़ी की कमी पड़ गयी थी। ऑक्सीजन के लिए जनता त्राहि-माम कर रही थी और ऑक्सीजन और दवाओं की लालची पूँजीपतियों और उनके दलालों द्वारा कालाबाज़ारी चल रही थी।

इन्हीं सब तरकीबों के ज़रिए भारत सरकार ने भारत में कुल कोविड मौतों का आँकड़ा 4.81 लाख बताया था। दुनियाभर में सभी पूँजीवादी सरकारों द्वारा कुल कोविड मौतों का आँकड़ा भी 54 लाख बताया गया था। लेकिन ये सारे आँकड़े झूठे हैं। आज विश्व स्वास्थ्य संगठन को भी सच्चाई माननी पड़ी है। उसके अनुसार, दुनिया में 1.5 करोड़ कोविड मौतें हुई हैं और उनमें

(पेज 12 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

मज़दूर बिगुल के सभी पाठकों और शुभचिन्तकों से...

दोस्तो,

'मज़दूर बिगुल' जिस काग़ज़ पर छपता है, उसकी क़ीमत में पिछले चार महीनों में लगभग 70 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हो गयी है। अख़बार की लागत में प्रति कॉपी एक रुपये से ज़्यादा का इज़ाफ़ा सिर्फ़ पिछले कुछ महीनों में हो गया है। इसके पहले भी छपाई की लागत लगातार बढ़ती रही है। ख़ासकर काग़ज़ की क़ीमतें तो पिछली वर्ष से ही बढ़ती रही थीं। अभी इनके और बढ़ने की सम्भावना है। छपाई और वितरण की अन्य लागतें भी काफ़ी बढ़ी हैं।

'मज़दूर बिगुल' सैकड़ों व्हॉट्सऐप ग्रुपों, क़रीब 30,000 पतों वाली ईमेल लिस्ट, वेबसाइट और फ़ेसबुक के ज़रिए हज़ारों पाठकों तक पहुँचता है, लेकिन हमारे सबसे मूल्यवान पाठक वे हैं जिनके हाथों में अख़बार की छपी प्रतियाँ पहुँचती हैं। हर महीने कभी 5000, कभी 6000 प्रतियाँ ही हम छाप पाते हैं जिनका एक छोटा हिस्सा डाक से सदस्यों को भेजा जाता है। ज़्यादातर प्रतियाँ विभिन्न शहरों में मज़दूरों की बस्तियों या कारख़ाना इलाक़ों में कार्यकर्ताओं के ज़रिए वितरित होती हैं।

क़रीब 12 वर्ष पहले 16 पेज के इस अख़बार की शुरुआत 5 रुपये क़ीमत से हुई थी। तबसे प्रेस की दरें लगभग दोगुनी और काग़ज़ की क़ीमत तीन गुनी हो चुकी हैं। तब भी आर्थिक संकट अक्सर रहता ही था मगर अब अख़बार की सिर्फ़ छपाई का ख़र्च इसकी क़ीमत के बराबर पहुँच रहा है। डाक और अन्य ख़र्चों को तो छोड़ ही दें। अख़बार की कुल लागत से कई गुना कमाई विज्ञापनों से करने वाले बुर्जुआ अख़बारों के लिए लागत बढ़ना कोई ख़ास समस्या नहीं है। लेकिन 'मज़दूर बिगुल' और इस जैसे अनेक जनपक्षधर अख़बारों, पत्रिकाओं और प्रकाशनों के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न बन जाता है।

इसलिए, मजबूर होकर जून 2022 के अंक से हम 'मज़दूर बिगुल' की एक प्रति की क़ीमत 10 रुपये करने जा रहे हैं। एक वर्ष की सदस्यता राशि 125 रुपये (साधारण डाक व्यय सहित) होगी। डाक विभाग की गड़बड़ियों से बचने के लिए रजिस्टर्ड डाक से अंक मँगवाने वालों के लिए एक वर्ष की सदस्यता राशि 325 रुपये होगी। आजीनव सदस्यता राशि 3000 रुपये होगी।

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।

2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।

3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)

4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिए लोगों तक पहुँचें?

तो क़लम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**
व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ नि:शुल्क उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul
व्हॉट्सऐप या टेलीग्राम पर मज़दूर बिगुल पाने के लिए इस नम्बर पर सम्पर्क करें : 9892808704

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत-से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 8860792320
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों का आन्दोलन जारी है!

– प्रियम्वदा

दिल्ली व केन्द्र सरकार की मिलीभगत से आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों की हड़ताल पर दमनकारी हेस्मा (हरियाणा एसेंशियल सर्विसेज़ एक्ट) क़ानून थोपे जाने के बाद हड़ताल स्थगित हुई है लेकिन आन्दोलन अपने नये रूप में जारी है। हेस्मा व ग़ैर-क़ानूनी बर्ख़ास्तगी के ख़िलाफ़ जहाँ एक तरफ़ कोर्ट में लड़ाई चल रही है वहीं दूसरी तरफ़ सैकड़ों महिलाकर्मी हर दिन सड़कों पर उतरकर **'नाक में दम करो'** अभियान चला रही हैं।

चिलचिलाती धूप और गर्मी के बावजूद महिलाएँ 16 मार्च से लगातार ही भाजपा और आम आदमी पार्टी के दफ़्तरों का घेराव कर रही हैं। महिलाकर्मी न सिर्फ़ इन चुनावबाज़ पार्टियों के कार्यालयों पर पहुँचकर इनके बहिष्कार का अभियान चला रही हैं बल्कि दिल्ली के अलग-अलग इलाक़ों में नुक्कड़ सभाओं के ज़रिए भाजपा और आप के मज़दूर-विरोधी चरित्र का भण्डाफोड़ भी दिल्ली की जनता के सामने कर रही हैं।

'नाक में दम करो' अभियान के तहत महिलाओं ने महिला एवं बाल विकास विभाग का घेराव भी किया। जनवरी 2022 से रुके हुए मानदेय के भुगतान के लिए महिलाकर्मियों ने डब्ल्यूसीडी दफ़्तर पहुँचकर विभाग के अधिकारियों को बातचीत के लिए मजबूर किया। वार्ता में यूनियन के ज्ञापन को संज्ञान में लेते हुए आश्वासन दिया गया था कि एक हफ़्ते के भीतर ही मानदेय, फ़ोन का बिल, इवेण्ट के पैसे व आँगनवाड़ी केन्द्रों के किराये का भुगतान कर दिया जायेगा। आंशिक रूप से यह भुगतान विभाग द्वारा शुरू कर दिया गया है। महिलाओं के उद्धार का दावा करने वाली दिल्ली सरकार को बुनियादी स्तरों पर कार्यरत महिलाकर्मियों के मामूली मानदेय का भुगतान करने के लिए भी मजबूर करना पड़ता है।

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन की अध्यक्षा शिवानी ने बताया कि ग़ैर-क़ानूनी टर्मिनेशन और हेस्मा के ख़िलाफ़ यूनियन ने दिल्ली उच्च न्यायालय में केस दायर किया है और हड़ताल को न्यायालय के फ़ैसले तक स्थगित किया गया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि अगर न्यायालय इस काले क़ानून को रद्द नहीं करता है तो दिल्ली की 22000 आँगनवाड़ीकर्मी हेस्मा की परवाह किये बिना दुबारा हड़ताल पर जायेंगी। आन्दोलन अब भी जारी है, कोर्ट की लड़ाई के साथ-साथ पूरे शहर में आम आदमी पार्टी और भारतीय जनता पार्टी के नेताओं, दलालों का निकलना मुश्किल है।

हड़ताल के दौरान आम आदमी पार्टी, भाजपा और कांग्रेस की असलियत उजागर हुई

हड़ताल ने इस मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था की कार्यशैली और विधायिका के साथ-साथ कार्यपालिका के चरित्र को भी नंगा किया है। इस हड़ताल में यह भी साफ़ हो गया कि वोटबैंक की राजनीति के नाम पर 'तू नंगा-तू नंगा' का खेल खेलने वाली तमाम पार्टियाँ असल में एक ही हैं। जब मज़दूरों के दमन की बात आती है तो इनके तमाम अन्तरविरोध उड़नछू हो जाते हैं।

केन्द्र की भाजपा सरकार दिल्ली में विधायकों का मूल वेतन बढ़ाकर मिनटों में 54 हज़ार से 90 हज़ार कर सकती है (भत्ते और अन्य कमाई तो अलग है) लेकिन 2018 से आँगनवाड़ीकर्मियों के 1500 रुपये और 750 रुपये की भीखनुमा मामूली बढ़ोत्तरी को भी अब तक नहीं लागू किया है।

दिल्ली में 'आप' और 'भाजपा' की कुत्ताघसीटी का सच सबके सामने है। आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों की माँगों पर घड़ियाली आँसू बहाने वाली भाजपा और कांग्रेस एक तरफ़ तो आन्दोलनरत आँगनवाड़ीकर्मियों के समर्थन की दुहाई देती रहीं वहीं दूसरी तरफ़ भाजपा हड़ताल पर थोपे काले क़ानून हेस्मा लगाये जाने में भागीदार रहीं। कांग्रेस ने अपने प्रवक्ता व सांसद अभिषेक मनु सिंघवी को आँगनवाड़ीकर्मियों के फ़र्ज़ी टर्मिनेशन के ख़िलाफ़ दिल्ली हाईकोर्ट में चल रहे केस के लिए दिल्ली सरकार की वकालत करने भेजा।

आँगनवाड़ी की स्त्री कामगारों के 'नाक में दम करो' अभियान को दिल्ली की मेहनतकश जनता का पूर्ण समर्थन मिल रहा है। कई जगहों पर इलाक़े के लोगों ने अभियान में शामिल होकर इन चुनावबाज़ पार्टियों के प्रति अपना रोष व्यक्त किया और आन्दोलनरत महिलाओं को अपना समर्थन दिया। बहिष्कार अभियान से घबराये भाजपा और आप के नेता-विधायकों को आँगनवाड़ियों के चक्कर लगाने पड़ रहे हैं। अपने कार्यालयों-दफ़्तरों से नदारद इन चुनावी मदारियों को आँगनवाड़ी जाकर महिलाकर्मियों को ख़ुश करने के लिए उन्हें सम्मानित करने का ढोंग करना पड़ रहा है। इनके घड़ियाली आँसू को बेनक़ाब करते हुए महिलाओं ने अपना आन्दोलन जारी रखा हुआ है। आन्दोलन को एक नये मुकाम पर पहुँचाते हुए "संघर्ष पखवाड़े" की शुरुआत की गयी है।

आरटी पैकेजिंग के श्रमिकों का संघर्ष

– अनन्त

गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा की औद्योगिक पट्टी में शायद ही ऐसा कोई दिन गुज़रता है, जब श्रमिकों का संघर्ष न होता हो! एक कारख़ाने का संघर्ष थमा नहीं कि दूसरे में शुरू हो जाता है। जेएनएस, हुण्डई मोबिस के मज़दूरों का संघर्ष थमा ही था कि एक अन्य कारख़ाने से विरोध के स्वर उभरकर सामने आने लगे। पहली अप्रैल को धारूहेड़ा स्थित आरटी पैकेजिंग लिमिटेड (ए रोलोटेनरस् ग्रुप कम्पनी) के मज़दूर संघर्ष की राह पर चल पड़े। यहाँ के श्रमिक अचानक काम से निकाले जाने के ख़िलाफ़ तथा चार महीने की बकाया तनख़्वाह और हिसाब चुकता करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। वे अपनी माँगों को लेकर कम्पनी गेट पर शान्तिपूर्ण तरीक़े से धरने पर बैठे हुए हैं। रिपोर्ट लिखे जाने तक उनका धरना जारी है।

यह कम्पनी प्लॉट नम्बर 73-74, फ़ेस-III औद्योगिक क्षेत्र, 123106 में धारूहेड़ा, (ज़िला रेवाड़ी, हरियाणा) में स्थित है। यह कम्पनी पैकेजिंग मटीरियल और सर्विस प्रदान करती है। इस कम्पनी ने भी श्रमिकों की छँटनी का वही पुराना हथकण्डा अपनाया, जो इस पट्टी की अन्य कम्पनियाँ अपनाती रही हैं। मज़दूरों की तरफ़ हर तरह की ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ते हुए कम्पनी ने उन्हें बिना किसी पूर्वसूचना के अचानक काम से निकाल दिया। श्रमिकों से 31 मार्च तक काम कराया गया और अगले दिन बिना किसी नोटिस पीरियड के उनकी छुट्टी कर दी गयी। कम्पनी ने नोटिस चिपका दिया कि कम्पनी का कारोबार घाटे में है, इसलिए काम बन्द किया जा रहा है। जब तक दोबारा काम शुरू नहीं किया जाता, तब तक नो वर्क–नो पेमेण्ट (काम नहीं तो पैसा नहीं) का नियम लागू होगा। श्रमिकों से कहा गया कि काम शुरू होने पर अगर ज़रूरत पड़ी तब ही काम पर वापस बुलाया जायेगा, तब तक के लिए श्रमिक इन्तज़ार करें। कम्पनी द्वारा दोबारा काम पर कब और किन शर्तों पर बुलाया जायेगा यह अस्पष्ट है। ऐसे में श्रमिक प्रबन्धन से हिसाब चुकाने की माँग कर रहे हैं। ग़ौरतलब है कि कम्पनी ने श्रमिकों को पिछले चार महीने के वेतन का भुगतान नहीं किया है, और अब अनिश्चितकाल के लिए काम बन्द कर रही है। सालों से इस कारख़ाने में काम कर रहे श्रमिक अचानक से बेरोज़गार हो गये हैं। इस उम्र में किसी नयी जगह काम मिलना बेहद मुश्किल हो जाता है। ऐसी स्थिति में श्रमिकों के लिए संघर्ष के अलावा और कोई चारा नहीं बचा।

कारख़ाना प्रबन्धन द्वारा बकाया वेतन के भुगतान तथा हिसाब चुकाने की माँग करने पर श्रमिकों को महज़ झूठा आश्वासन दिया जा रहा है। श्रमिकों द्वारा श्रम विभाग में शिकायत के बावजूद फ़िलहाल कम्पनी प्रबन्धन ने अभी तक कोई पैसा नहीं दिया है। श्रम विभाग, श्रमिक पक्ष तथा प्रबन्धन पक्ष के बीच हुई शुरुआती त्रिपक्षीय वार्ता में प्रबन्धन ने 19 अप्रैल तक भुगतान करने का आश्वासन दिया था। किन्तु इस तारीख़ के बाद श्रमिकों को अगली तारीख़ मिल गयी, लेकिन भुगतान आज तक नहीं हुआ। इस कारख़ाने में श्रमिकों को पहले भी इसी प्रकार से निकाला जाता रहा है। ज्ञात रहे कि पहले यहाँ मज़दूरों की संख्या एक हज़ार के क़रीब थी।

केवल इस कारख़ाने में ही नहीं, बल्कि पूरी औद्योगिक पट्टी में कम्पनियाँ रोज़ाना ही श्रमिकों को अलग-अलग बहाने बनाकर निकालती रहती हैं। सालों साल काम कराकर उन्हें गन्ने की तरह निचोड़कर छोड़ दिया जाता है। श्रमिकों को कोई मुआवज़ा नहीं दिया जाता। उनके किसी भी प्रकार के अधिकार की हिफ़ाज़त नहीं की जाती। सरकार-श्रम विभाग-पुलिस प्रशासन का गठजोड़ इस बात को सुनिश्चित करता है कि श्रमिक इसके ख़िलाफ़ आवाज़ न उठा सकें। असल में आज पूरे देश के साथ-साथ इस पट्टी में भी श्रमिकों का पक्ष कमज़ोर है। आज मज़दूर अलग-अलग कारख़ानों की चौहद्दियों में क़ैद हैं, जबकि ज़रूरत है कि इलाक़ाई व सेक्टरगत आधार पर एकजुटता क़ायम कर संघर्ष को आगे बढ़ाया जाये। बीते दो दशक का हर बड़ा छोटा संघर्ष इस ज़रूरत की पुष्टि करता है।

ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क के अनुसार, भारत के 36 प्रतिशत ग़रीबों के घरों में बिजली, नल का पानी और साफ़-सफ़ाई के इन्तज़ाम नहीं हैं। 2030 तक, चार करोड़ भारतीय परिवार घर का ख़र्च उठाने में सक्षम नहीं होंगे।

दूसरी ओर, गुड़गाँव में उच्च मध्य वर्ग के लिए बनी कई आलीशान हाउसिंग सोसायटियों में ऐशो-आराम के ऐसे इन्तज़ाम किये गये हैं जो भारत जैसे देश में एक शर्मनाक अय्याशी के सिवा और कुछ नहीं है। जैसे, एक सोसायटी में 'स्नो रूम' बनाया गया है, जिसमें गर्मी के मौसम में भी लोग बर्फ़ में लोटने और खेलने का मज़ा ले सकते हैं। कई जगह फ़्लैटों के अन्दर ही स्विमिंग पूल बने हुए हैं।

करोड़ों भारतीयों के सिर पर छत भी नहीं है, और अकेले राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में लाखों फ़्लैट ख़ाली पड़े हैं।

जैसाकि **भगतसिंह** ने अदालत में कहा था, **"यह भयानक असमानता और ज़बर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।"**

‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ बनाम दिल्ली सरकार और महिला एवं बाल विकास विभाग के दिल्ली हाईकोर्ट में जारी केस की राजनीतिक रपट और हर दिन के साथ उजागर होती ‘सीटू’ की ग़द्दारी और विश्वासघात

ज्ञात हो कि ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ ने दिल्ली सरकार व केन्द्र सरकार द्वारा अन्यायपूर्ण तरीक़े से हेस्मा थोपे जाने के बाद हड़ताल के अस्थायी रूप से स्थगित किये जाने के बाद 14 मार्च 2022 को दिल्ली सरकार और महिला एवं बाल विकास (डब्ल्यूसीडी) विभाग द्वारा 884 आँगनवाड़ी वर्कर्स और हेल्पर्स को ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से टर्मिनेट किये जाने के बाद दिल्ली हाईकोर्ट में दिल्ली सरकार व डब्ल्यूसीडी विभाग पर मुक़दमा (रिट पेटीशन) दायर किया था। (हालाँकि दिल्ली सरकार ने पहले अदालत में संख्या 991 बतायी थी, लेकिन आँगनवाड़ीकर्मियों के सड़क पर जारी ‘नाक में दम करो अभियान’ से घबराकर बाद में उन्होंने यह संख्या बदल दी।)

तब से रिपोर्ट लिखे जाने तक इस मुक़दमे की छह तारीख़ें पड़ चुकी हैं। इस मुक़दमे के दौरान ही ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ ने कई जीतें दर्ज की हैं :

1. दिल्ली सरकार और डब्ल्यूसीडी विभाग ने ज्ञात तौर पर टर्मिनेशन के लिए 11,492 आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स की लिस्ट बनायी थी और 884 टर्मिनेशन के बाद बाक़ी टर्मिनेशन किये जाने थे लेकिन मुक़दमे की पहली तारीख़ यानी 15 मार्च को हाई कोर्ट में हुई सुनवाई में सरकार को यह कहने को मजबूर होना पड़ा कि अन्य कोई टर्मिनेशन आगे नहीं किये जायेंगे और अदालत में यह स्वीकार करने के कारण आगे होने वाले टर्मिनेशनों पर पूर्ण रोक लग गयी। यह ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के नेतृत्व में पहली बड़ी जीत थी।

2. दिल्ली सरकार और डब्ल्यूसीडी विभाग को 31 मार्च को ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ द्वारा नयी नियुक्तियों के प्रयासों को अदालत की निगाह में लाये जाने के बाद अदालत ने दिल्ली सरकार को आदेश दिया कि कोई भी नयी नियुक्ति नहीं की जायेगी, जिसके कारण दिल्ली सरकार और डब्ल्यूसीडी विभाग द्वारा टर्मिनेटेड वर्कर्स और हेल्पर्स की जगह नयी नियुक्तियाँ करने की साज़िश नाकाम हो गयी और अब दिल्ली सरकार और उसका यह विभाग नयी नियुक्तियाँ कर ही नहीं सकता है। यह ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के नेतृत्व में दूसरी बड़ी जीत थी।

3. अदालत ने सीटू जैसे दल्लों और भाजपा के दल्लों की मिलीभगत द्वारा अलग से केस डालने पर ज़बर्दस्त फटकार इन दलालों को लगायी और कहा कि ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों की एकमात्र प्रातिनिधिक यूनियन है और अदालत अन्य किसी तथाकथित यूनियन की कोई भी बात नहीं सुनने वाली है। यह सीटू जैसी दलाल और ग़द्दार यूनियनों के मुँह पर भी एक करारा तमाचा है जो कि अपनी पंजीकरण संख्या को लेकर इठलाते हैं और मज़दूरों-कर्मचारियों से विश्वासघात करते हैं। अदालत के इस रवैये ने दिखला दिया है कि मज़दूरों की असली ताक़त उनका संघर्ष और एकजुटता है, न कि दलाल यूनियनों के दिखावटी पंजीकरण। यह ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के नेतृत्व में तीसरी बड़ी जीत थी।

4. दिल्ली सरकार व डब्ल्यूसीडी विभाग के बार-बार ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ द्वारा केस दर्ज किये जाने पर एतराज़ करने के बावजूद दिल्ली हाई कोर्ट ने स्पष्ट कर दिया कि ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ ने ही हड़ताल का नेतृत्व और संगठन किया था और इसलिए दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों की एकमात्र नुमाइन्दा होने के चलते उसे ही यह मुक़दमा करने का अधिकार है। यहाँ तक कि दिल्ली सरकार ने भी अतीत में हमारी यूनियन से पत्राचार और वार्ताएँ की हैं और अब वह उसे पूर्ण रूप से मान्यता देने के लिए मजबूर है। यह ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के नेतृत्व में चौथी बड़ी जीत थी।

5. एक राजनीतिक उपलब्धि यह भी रही कि इस मुक़दमे में दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों व उनकी यूनियन ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के विरुद्ध आम आदमी पार्टी के साथ भाजपा और कांग्रेस भी एकजुट हो गये, जो कि इस बात से पता चलता है कि जारी मुक़दमे को ख़राब करने के इरादे से भाजपा के वकीलों ने अलग से केस दायर करने की कोशिश की (जिसे दिल्ली हाई कोर्ट ने एक ज़बर्दस्त फटकार के साथ ख़ारिज कर दिया) और आम आदमी पार्टी की दिल्ली सरकार की ओर से केस लड़ने का काम कांग्रेस के वरिष्ठ वकील अभिषेक मनु सिंघवी कर रहे हैं। कोई ताज्जुब नहीं है कि पूँजीवादी राजनीति में कांग्रेस का बीमार शरीर ताबूत में लेटा हुआ है। जब हरकतें ऐसी होंगी तो नतीजा भी वैसा ही होगा। भाजपा ने भी इस आन्दोलन को लपकने की सीटू के ही समान बहुत कोशिशें कीं लेकिन उनकी भी दाल नहीं गली। वजह यह है कि ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ किसी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टी की पिछलग्गू यूनियन नहीं है, बल्कि यह एक स्वतंत्र क्रान्तिकारी यूनियन है जिसे दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों ने ख़ुद बनाया है। यह ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के नेतृत्व में पाँचवी बड़ी जीत थी।

6. जारी मुक़दमे के दौरान ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ ने अदालत की निगाह में यह बात भी लायी कि दिल्ली सरकार ने जो मामूली-सी मानदेय बढ़ोत्तरी हड़ताल के दबाव में आकर की थी, उसका भी अभी तक आँगनवाड़ीकर्मियों को भुगतान नहीं किया गया है और अधिकांश आँगनवाड़ीकर्मियों का मानदेय भुगतान चार से छह महीने से ज़्यादा समय से बकाया पड़ा हुआ है। अदालत ने इस बारे में भी दिल्ली सरकार से जवाबदेही माँगी। इसी बाबत 18 अप्रैल को डब्ल्यूसीडी विभाग पर ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ द्वारा एक भारी प्रदर्शन भी किया गया जिसमें अधिकारियों को मानदेय भुगतान एक सप्ताह के भीतर करने का वायदा करना पड़ा। अब आँगनवाड़ी वर्कर्स और हेल्पर्स का बकाया मानदेय उनके बैंक खाते में आना शुरू हो चुका है हालाँकि इस प्रक्रिया पर यूनियन क़रीबी से निगाह रखे हुए है। यह ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के नेतृत्व में छठी बड़ी जीत थी।

मुक़दमे की अगली तारीख़ 4 मई 2022 है। जिस प्रकार हम अभी तक इस मुक़दमे में जीतें हासिल करते आये हैं, उसी तरह हम आख़िरी जीत मिलने तक आगे बढ़ते जायेंगे, यानी सारे ग़ैर-क़ानूनी टर्मिनेशन वापस कराने के लक्ष्य को हासिल करने तक यह लड़ाई आगे बढ़ती जायेगी।

सीटू की ग़द्दारी की नयी मिसालें, प्रमाण समेत

अब जबकि इस मुक़दमे में दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों का पक्ष लगातार मज़बूत होता जा रहा है, तो सीटू के दल्ले अपने दस-बारह लग्गू-भग्गुओं को लेकर यहाँ-वहाँ घूमते नज़र आ रहे हैं, ताकि ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के संघर्ष को टर्मिनेशन वापसी की जीत मिलने के साथ ही यह दावा कर सकें कि इसमें उनकी भी कोई भूमिका थी! लेकिन अफ़सोस उनके इस झाँसे में दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मी नहीं आ रही हैं। इसकी वजह भी साफ़ है।

सीटू के दल्लों की थोड़ी ज़ुबान फिसल गयी और अपनी यूनियन के फ़ेसबुक पेज से उन्होंने स्वीकार कर लिया कि उन्होंने डब्ल्यूसीडी विभाग के अधिकारियों से यह शिकायत की थी कि टर्मिनेशन करने के लिए विभाग ने जो सूची बनायी उसमें लापरवाही बरती गयी और यह भी कि सीटू ने स्वयं ही टर्मिनेशन के लिए एक लिस्ट विभाग और सरकार को सौंपी थी ताकि हड़ताल को तोड़ा जा सके! यानी कि सीटू के दल्लों का एतराज़ टर्मिनेशन पर नहीं था, बल्कि इस बात पर था कि विभाग को टर्मिनेशन के लिए सूची ढंग से बनानी चाहिए थी और बिना फेरबदल सीटू द्वारा सौंपी गयी सूची पर ही अमल करना चाहिए था! वजह यह है कि विभाग ने इनके दो-चार पिछलग्गुओं को भी बर्ख़ास्त कर दिया, जो कि कभी हड़ताल में शामिल नहीं हुई थीं और सीटू के इशारे पर हड़ताल को तोड़ने की साज़िश में शुरू से लगी हुई थीं।

इससे वह बात भी साबित हो गयी जो कि ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ शुरू से ही देश के अन्य राज्यों की आँगनवाड़ीकर्मियों को बताती आयी थी। सीटू ने 9 मार्च को हड़ताल के अस्थायी रूप से स्थगित होने के पहले ही डब्ल्यूसीडी विभाग और उसके मंत्री राजेन्द्र पाल गौतम को मिलकर मुख़बिरी की थी और टर्मिनेशन हेतु आँगनवाड़ीकर्मियों की लिस्ट सौंपी थी। सीटू के दलालों की अब यही तो शिकायत है कि दिल्ली सरकार और उसके इस विभाग ने इस लिस्ट पर हूबहू अमल नहीं किया और उसमें कुछ फेरबदल कर दिया।

सीटू के दलाल न सिर्फ़ मज़दूर वर्ग के ग़द्दार हैं, बल्कि मूर्ख भी हैं। यही कारण है कि इन बेचारों की ज़ुबान अपने यूनियन के फ़ेसबुक पेज की पोस्ट में फिसल गयी और ये ग़लती से यह बात मान बैठे कि इन्होंने विभाग से माँग नहीं की कि सारे टर्मिनेशन रद्द करने का तो बस ज़ुबानी जमाख़र्च करके नौटंकी की और असल बात यह है इन्होंने यह शिकायत दर्ज करायी कि टर्मिनेशन के लिए बनायी गयी लिस्ट में लापरवाही की गयी है। यानी किये गये टर्मिनेशनों में ये अधिकांश टर्मिनेशनों को सही मानते हैं! मानें भी क्यों न? मूल लिस्ट तो सीटू के इन दल्लों ने ख़ुद ही बनायी थी!

दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों ने तो सीटू की असलियत को अच्छी तरह से समझ लिया है और वे उनके झाँसे में कभी नहीं आने वाली हैं। यही तो वजह है कि दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों ने 2015 में जूते मारकर सीटू को अपने बीच से भगा दिया था। लेकिन ‘दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन’ के नेतृत्व ने देश की आँगनवाड़ीकर्मियों से यह अपील की कि वे भी सीटू के समझौतापरस्तों, ग़द्दारों और दलालों को अपने आन्दोलन में रत्ती भर भी पाँव न जमाने दें, जहाँ कहीं सीटू के दलाल मौजूद हों, उन्हें अपने आन्दोलन से जूते मारकर बाहर करें और अपनी सशक्त स्वतंत्र क्रान्तिकारी यूनियनों का निर्माण और गठन करें।

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेलपेर्स यूनियन की अध्यक्षा ने बताया की “ये जीत तो महज़ शुरुआत हैं। पहले सारे टर्मिनेशन वापस करवाये जायेंगे, फिर हेस्मा को रद्द करवाया जायेगा, सारे बकाया मानदेय का भुगतान करवाया जायेगा और मामूली मानदेय बढ़ोत्तरी को पर्याप्त बनाने के लिए फिर से हड़ताल की शुरुआत की जायेगी”

जहाँगीरपुरी में हिंसा और मेहनतकशों के घरों पर सरकारी बुलडोज़र फ़ासिस्ट भाजपा सरकार द्वारा देशभर में जारी साम्प्रदायिक षड्यंत्र की एक और कड़ी है

– अनन्त

देशभर में बीते दिनों एक सुविचारित फ़ासीवादी मॉडल के तहत संघी धार्मिक उन्माद फैलाने के काम में जुटे हुए हैं। एक तरफ़ जब महँगाई आसमान छू रही है, बेरोज़गारी चरम पर है, जनता के ऊपर दुख तकलीफ़ों का पहाड़ टूटा हुआ है, तभी लोगों को बाँटने के लिए एक मुहिम के तहत निरन्तर संघी फ़ासीवादी गतिविधि जारी है। पिछले दिनों विक्रम संवत् नववर्ष, रामनवमी से लेकर हनुमान जयन्ती के मौक़े को दंगा भड़काने के मौक़े के तौर पर भुनाया गया। यह मोदी के "अवसर को आपदा में बदलने" की तरकीब का एक हिस्सा है। रामनवमी पर गुजरात के हिम्मत नगर, मध्य प्रदेश के खरगोन, पश्चिम बंगाल के हावड़ा, झारखण्ड के लोहरदग्गा, बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर, इसके अलावा अन्य मौक़ों पर राजस्थान के करौली तथा जोधपुर, उत्तर प्रदेश के गहमर में तथा ओड़िशा में अम्बेडकर जयन्ती के मौक़े समेत कई छोटी-बड़ी धार्मिक तथा जातिगत हिंसा की घटनाएँ घटी हैं।

जहाँगीरपुरी में हुई साम्प्रदायिक हिंसा का संक्षिप्त विवरण

इस कड़ी में ताज़ा मामला देश की राजधानी दिल्ली का है। बीते 16 अप्रैल को हनुमान जयन्ती पर दिल्ली के उत्तर पश्चिमी इलाक़े में स्थित जहाँगीरपुरी में राष्ट्रीय बजरंग दल व अन्तरराष्ट्रीय हिन्दू परिषद द्वारा विशाल बाइक रैली का आयोजन किया गया, जिसने बाद में हिन्दू-मुस्लिम तनाव का रूप ले लिया। इससे पहले इसी दिन मस्जिद के पास से दो जुलूस निकाले गये थे। पुलिस ने पहले दो की अनुमति दी थी, जो कि अपने आप में दिल्ली पुलिस को प्रश्नों के घेरे में खड़ा कर देता है। पहले दो जुलूस के दौरान भी साम्प्रदायिक तनाव फैलाने की कोशिश की गयी थी। अल्पसंख्यक समुदाय को उकसाने का प्रयास किया गया था, लेकिन पहले दो चक्र में कोई हिंसा नहीं हुई। तीसरे जुलूस के दौरान हिंसा हुई, प्रशासन द्वारा उस जुलूस के लिए कोई अनुमति नहीं दी गयी थी। शाम 6 बजे क़रीब तीसरी रैली मंगल बाज़ार से होते हुए जामा मस्जिद पर पहुँची। यह समय मुस्लिम समुदाय के लोगों के रोज़ा खोलने के नमाज़ का समय था। उस समय 300-400 लोगों की भीड़ मस्जिद के आगे रुकी, जो हाथ मे भगवा झण्डा तलवार, तमंचे आदि थामे हुए थी। गाड़ियों में बड़े-बड़े स्पीकर लगे हुए थे, जिसमें ज़ोर-शोर से उन्मादी-भड़काऊ गाने बजाये जा रहे थे और इसी दौरान उन्मादी भीड़ द्वारा मस्जिद में भगवा झण्डा फहराने की कोशिश की गयी। नतीजतन दोनों पक्षों में पहले बहस फिर झड़प शुरू हो गयी। किसी एक ओर से पथराव शुरू हुआ और फिर दोनों तरफ़ से हिंसा होने लगी। आधिकारिक तौर पर इस झड़प में इलाक़े का एक व्यक्ति तथा 8 पुलिसकर्मी घायल हुए। हिंसा की घटना की जाँच पड़ताल के दौरान पता चला कि साम्प्रदायिक माहौल ख़राब करने वाली इस रैली में शामिल ज़्यादातर उपद्रवी बाहर से आये हुए थे। फ़ासीवादी लफंगों के द्वारा उत्पात मचाने के बाद अगली भूमिका दिल्ली पुलिस की थी।

उस घटना के बाद दिल्ली पुलिस ने "शान्ति-व्यवस्था" बनाये रखने के नाम पर पूरे इलाक़े को क़ैदख़ाने में तब्दील कर दिया। जिस इलाक़े में यह घटना घटी है, यानी जहाँगीरपुरी सी ब्लॉक तथा सी-डी ब्लॉक, वहाँ इन दोनों ब्लॉक के बीच पड़ती है सी ब्लॉक की मार्केट। इन ब्लॉक की सभी गलियों के बाहर पुलिस बैठी थी, मार्केट के दोनों छोर पर बैरिकेड्स खड़े थे, पूरा मार्केट बन्द था। हर गली-नुक्कड़ के बाहर पुलिस बैठी थी। लोगों के सारे कामकाज बन्द थे। घर से ग़ैर-ज़रूरी बाहर निकलने पर पाबन्दी थी। इलाक़े में भी लोगों के अन्दर दहशत का माहौल था। इस इलाक़े में हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदाय की ज़्यादातर ग़रीब मेहनतकश आबादी रहती है। यह अनायास नहीं है कि जिस आबादी के ऊपर इस व्यवस्था की सबसे अधिक मार पड़ रही है, उन्हीं के इलाक़ों में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने के संघी प्रयोग किये जा रहे हैं।

इस पूरी घटना पर पुलिस ने अभी तक दो नाबालिग समेत 32 लोगों को गिरफ़्तार किया है। पुलिस ने पहले चरण में 14 लोगों को गिरफ़्तार किया था, उसमें सभी अल्पसंख्यक समुदाय के लोग थे। मीडिया तथा सोशल मीडिया में तैर रही तस्वीरें चीख़-चीख़कर बता रही थीं कि जुलूस में शामिल लोगों के हाथ में हथियार था। हुड़दंगियों की पहचान सीधे कैमरे पर हो रही थी। फिर भी पुलिस ने एकतरफ़ा कार्रवाई करते हुए एक समुदाय विशेष के लोगों को गिरफ़्तार किया। आख़िरकार, जन दबाव के कारण पुलिस ने जुलूस का आयोजन कर रहे विश्व हिन्दू परिषद के नेता समेत कुछ अन्य लोगों को गिरफ़्तार किया। लेकिन अभी भी हिंसा में शामिल बजरंग दल और अन्य विहिप कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार किया जाना बाक़ी है। गिरफ़्तारियों के अलावा पुलिस ने 3 तमंचे और 5 तलवारें ज़ब्त की थीं।

इस पूरे घटनाक्रम में दिल्ली पुलिस पर उठते कुछ सवाल

इस पूरे घटनाक्रम में पुलिस-प्रशासन पर भी कई सवाल उठते हैं। आख़िर उनकी मौजूदगी में यह घटना कैसे हुई? क्या उन्हें पहले से रैली के रूट की सूचना नहीं थी और अगर थी तो वहाँ मस्जिद के आस-पास रुक कर माहौल क्यों ख़राब करने दिया गया? पुलिस ने अंसार व असलम को मुख्य आरोपी बताया पर रैली की जो वीडियो सामने आयी थी, उसमें साफ़-साफ़ दिख रहा था कि रैली में आये लोगों के हाथ में तलवार, तमंचे व अन्य हथियार थे। उन्हें गिरफ़्तार क्यों नहीं किया गया? दिल्ली पुलिस ने जहाँगीरपुरी से आरोपियों के नाम पर शुरुआत में सिर्फ़ मुसलमानों की गिरफ़्तारी क्यों की? शोभा यात्रा में पिस्तौल, तलवार, चाक़ू और डण्डा लहराने का वीडियो सामने आया है। उसे बनाने वाले चश्मदीद हैं। क्यों दिल्ली पुलिस ने उस वीडियो में दिख रहे अराजक तत्वों की इन हरकतों पर आर्म्स एक्ट में कोई केस दर्ज नहीं किया? क्या उन लोगों की पहचान की गयी? पुलिस पर सवाल तब और उठ जाता है कि एक तरफ़ तो इलाक़े को छावनी में तब्दील कर दिया गया, लेकिन दूसरी तरफ़ भाजपा के नेताओं के ऊपर कोई लगाम नहीं लगायी गयी। घटना के अगले ही दिन पुलिस की मौजूदगी के बावजूद, भाजपा नेताओं ने मस्जिद के ठीक सामने नारेबाज़ी की, जो एक दिन पहले तनाव का केन्द्र था। भाजपा के मन्दिर प्रकोष्ठ प्रमुख करनैल सिंह ने रविवार दोपहर मस्जिद के सामने "जिसको इस देश में रहना होगा, जय श्री राम कहना होगा" के भड़काऊ नारे फिर लगाये। आम लोगों के घर से निकलने तक पर पाबन्दी की जा रही है, और भाजपा नेता खुले में ज़हर उगल रहे हैं। जहाँगीरपुरी सी ब्लॉक, जे जे कॉलोनी में रह रही ग़रीब आबादी संगीन के साये में जीवन जीने के लिए मजबूर है, अभी तक पूरा इलाक़ा छावनी में तब्दील है। उन्हें उनकी ही गलियों में क़ैद कर लिया गया है। भाजपा फ़ासीवादी एजण्डे के तहत पुलिस बल का प्रयोग कर रही है। इस पूरी घटना के गोदी मीडिया के कवरेज में स्थानीय हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही आबादी का पक्ष ग़ायब रहा। मसालेदार ख़बरों के साथ गोदी मीडिया अपने ज़हर उगलने के काम में लगी हुई थी।

जहाँगीरपुरी के स्थानीय लोगों से बातचीत का ब्यौरा

शाकिब (बदला हुआ नाम) ने बताया कि उनके भतीजे को, जो नाबालिग है, रात में 2 बजे पुलिस आकर उठा ले गयी।

आगे उन्होंने बताया कि इसी मोहल्ले में उनका बचपन बीता पर आजतक वहाँ कभी हिन्दू-मुस्लिम के झगड़े नहीं हुए। आपस में हिन्दू मुस्लिम सभी त्यौहारों को मिलकर मनाते थे पर ये सारा माहौल तो जानबूझकर ख़राब किया गया है। माहौल ख़राब करने वाले लोग बाहर से आये थे। वहीं हिन्दू समुदाय के एक स्थानीय दुकानदार ने कहा कि यहाँ हर समुदाय के लोग लम्बे समय से शान्ति से रह रहे हैं। जहाँगीरपुरी एक संवेदनशील इलाक़ा है, इसलिए हमें सावधान रहना होगा। उन्होंने शोभा यात्रा में तलवारें और हथियार ले जाने की ज़रूरत पर सवाल खड़ा किया। जुलूस के लिए मस्जिद के सामने का रास्ता चुने जाने तथा वहाँ भड़काऊ नारेबाज़ी किये जाने को ग़लत ठहराया।

जारी तनाव के बीच चला बुलडोज़र

बजरंग दल और विश्व हिन्दू परिषद द्वारा निकाली गयी शोभा यात्रा से शुरू हुए तनाव के बाद अब स्थिति को गम्भीर बनाने की ज़िम्मेदारी प्रशासन तथा गोदी मीडिया ने ले ली थी। वहाँ स्थिति को सामान्य बनाने के बजाय सत्ता में बैठी फ़ासीवादी ताक़तें हालात को और बद से बदतर बनाने में लगी हुई थीं। इसी कड़ी में एनडीएमसी को पूरे इलाक़े को छोड़ ठीक वहीं यानी मस्जिद तथा उसके आस-पास के इलाक़े में "अतिक्रमण हटाने" की सूझी जहाँ तनाव फैला हुआ है। ऐसा करने के पीछे एनडीएमसी का कुतर्क था कि यहाँ पुलिस बल पहले से मौजूद है तो इसी बहाने हम अतिक्रमण हटा रहे हैं। अतिक्रमण हटाने की कोई भी पूर्वसूचना स्थानीय आबादी को नहीं दी गयी। सुबह-सुबह ही जेसीबी अपने काम पर लग गयी, लोगों को अपना सामान तक उठाने की मोहलत नहीं दी गयी। सत्ता कैसे अल्पसंख्यक आबादी को उकसाने तथा साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने का काम कर रही है यह इस घटना से पता चलता है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस कार्रवाई पर स्टे ऑर्डर आने के बावजूद भी प्रशासन तोड़-फोड़ की कार्रवाई करता रहा। 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' के कार्यकर्ताओं तथा वहाँ मौजूद कुछ स्थानीय आबादी व गोदी मीडिया के इतर अन्य पत्रकारों ने जब प्रशासन से जवाब तलब किया कि कोर्ट के आदेश के बाद भी क्यों बुलडोज़र चलाया जा रहा है, तब प्रशासन का जवाब था कि उनतक अभी ऐसा कोई आदेश नहीं पहुँचा है। यहाँ तक कि कुछ लोग आदेश की कॉपी तक लाकर दिखा रहे थे, किन्तु प्रशासन की अपनी योजना तथा मंशा तय थी। मस्जिद के बाहर का अतिक्रमण तोड़ा गया। वहाँ आसपास ज़्यादातर दुकानें अल्पसंख्यक आबादी के लोगों की थी, उन्हें तोड़ा गया। मस्जिद से क़रीब 50/60 मीटर की ही दूरी पर एक मन्दिर स्थित है। उस मन्दिर का भी एक हिस्सा अतिक्रमण के दायरे में था, किन्तु बुलडोज़र उससे ठीक एक इमारत पहले तक चला और मन्दिर के आगे से लौट गया। ज़ाहिर है कि ये बुलडोज़र ग़रीबों की बस्तियों पर बड़ी आसानी से चल जाते हैं, किन्तु वहीं दिल्ली में अमीरों की कॉलोनी में जो अवैध निर्माण हैं वे बिना किसी बाधा के खड़े रहते हैं। इस क्रिया के साथ प्रशासन स्पष्ट तौर पर एक सन्देश दे रहा है, अपने साम्प्रदायिक चरित्र को उजागर कर रहा है। सरकार व प्रशासन की मंशा ज़ाहिर है कि वह तनाव घटाना नहीं बल्कि बरक़रार रखना चाहते हैं।

जहाँगीरपुरी में हुई हिंसा अनायास नहीं हैं बल्कि संघी फ़ासीवादियों द्वारा पिछले एक माह से देशभर में जारी साम्प्रदायिक घटनाओं के क्रम में एक और कड़ी हैं। भाजपा और संघ परिवार अपने फ़ासीवादी एजेण्डे पर काम करते हुए इन घटनाओं को अंजाम देने में लगे हुए हैं। इस घटना के साथ एक बार फिर दिल्ली की सत्ता में बैठे छोटे मोदी उर्फ़ केजरीवाल की असलियत सामने उजागर हो रही है। इस पूरी घटना पर मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल ने असंवेदनशीलता दिखाते हुए पहले चुप्पी साधी रखी और बाद में भाजपा पर आरोप लगाया कि उसने बंगलादेश के अवैध प्रवासियों को जहाँगीरपुरी में बसने की इजाज़त दी! यानी केजरीवाल को मुसलमान आबादी को निशाना बनाये जाने, दंगे करवाने और ग़रीबों पर बुलडोज़र चलवाने पर एतराज़ नहीं था बल्कि वह भी इस मौक़े पर साम्प्रदायिक राजनीति की मलाई चाटने में लगा हुआ था! सीएए-एनआरसी के विरुद्ध आन्दोलन के बाद हुए दिल्ली दंगे में भी इनका यही रुख़ था। संघी मानसिकता से ग्रस्त केजरीवाल से फ़ासीवादी ताक़तों के विरुद्ध बोलने की उम्मीद करना ही बेमानी है।

दूसरी ओर एक प्रगतिशील आबादी वृन्दा करात के बुलडोज़र के आगे खड़े होने पर भी लहालोट हो रही है। हक़ीक़त यह है कि जब तक वृन्दा करात जहाँगीरपुरी पहुँची थीं, तब तक बुलडोज़र अपना काम कर चुका था। फ़ोटो सेशन के बाद जब वह पुलिस अधिकारियों के साथ उनके तम्बू में बैठी थीं, तभी पुलिस गलियों में घूमकर डण्डे भाँज रही थी। इस समय सारे मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी,

(पेज 7 पर जारी)

दुनिया की सबसे ताक़तवर कम्पनियों में से एक को हराकर अमेज़न के मज़दूरों ने कैसे बनायी अपनी यूनियन

– भारत

दुनिया की सबसे बड़ी कम्पनियों में से एक अमेज़न लगातार अपने यहाँ मज़दूरों की यूनियन बनने से रोकने की कोशिश करती रही है। यूनियन न बन पाये इसके लिए वह अरबों रुपये अदालती कार्रवाई पर और तरह-तरह की तिकड़मों पर ख़र्च करती रही है। मज़दूरों को डराने-धमकाने, उनके बीच फूट डालने के लिए उसने बाक़ायदा कई फ़र्मों को करोड़ों के ठेके दिये हुए हैं।

लेकिन उसकी वर्षों पुरानी कोशिश आख़िरकार नाकाम हो गयी है। अमेरिका में स्टेटन आइलैण्ड स्थित अमेज़न के वेयरहाउस के कर्मचारियों ने यूनियन बनाने सम्बन्धी प्रस्ताव को बड़े बहुमत से पारित कर दिया है। इसके पहले अमेज़न की जिस किसी इकाई में ऐसी कोशिश हुई, कम्पनी उसे नाकाम करने में सफल रही। आरोप है कि कई जगहों पर कम्पनी ने इसके लिए करोड़ों डॉलर ख़र्च किये और विवादास्पद क़दम उठाये। अमेज़न यह सब इसलिए करती रही है क्योंकि मालिकान तात्कालिक तौर पर सबसे ज़्यादा मज़दूरों की यूनियन से ही घबराते हैं।

अमेरिका में परम्परा यह है कि यूनियन बनाने के प्रस्ताव पर कारख़ानों में मज़दूरों के बीच मतदान कराया जाता है। 1980 के बाद से यूनियनों के कमज़ोर होने का चलन रहा है। सरकारों की सहायता से पूँजीपतियों ने 1970 के दशक से ही यूनियनों पर और श्रम अधिकारों पर आक्रामक हमले किये और मज़दूर आन्दोलन के भीतर सक्रिय सुधारवादियों और पूँजीपतियों की एजेण्ट यूनियनों के कारण वे इसमें काफ़ी हद तक कामयाब भी रहे हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से लहर बदल रही है। मज़दूरों के बीच भी यह भावना घर करने लगी है कि अब बहुत हो गया! तमाम जगहों पर फिर से यूनियन बनाने की कोशिशें तेज़ हो गयी हैं। इनमें कई जगहों पर कर्मचारियों को सफलता हाथ लगी है। उसी में अब स्टेटेन आईलैण्ड का अमेज़न का वेयरहाउस भी शामिल हो गया है। वहाँ हुए मतदान में 2,654 कर्मचारियों ने यूनियन बनाने के पक्ष में मतदान किया। जबकि 2,121 कर्मचारियों ने इसका विरोध किया। वहाँ कुल 8,325 मतदाता थे।

अमेज़न ने पिछले दो सालों में बड़े पैमाने पर कर्मचारियों को काम पर रखा है। कम्पनी में विश्व स्तर पर 16 लाख कर्मचारी हैं। महामारी ने कर्मचारियों में कार्यस्थल की सुरक्षा के बारे में चिन्ताओं को बढ़ाया है। स्टेटन आईलैण्ड वेयरहाउस, जिसे JFK8 के नाम से जाना जाता है, पिछले साल न्यूयॉर्क टाइम्स ने अपनी जाँच में पाया था कि अमेज़ॅन के रोज़गार मॉडल में कई प्रकार की विसंगतियाँ हैं। अमेज़न में मज़दूर पिछले कई वर्षों से यूनियन के गठन का प्रयास कर भी रहे थे।

अमेज़न ने भी पूरी कोशिश की थी कि यूनियन का गठन न हो पाये। मीडिया रिपोर्टों के मुताबिक़ मतदान से ठीक पहले अमेज़न के अधिकारियों ने कर्मचारियों से सम्पर्क की मुहिम चलायी। इस दौरान वे कर्मचारियों से यूनियन गठन के विरोध में मतदान करने की अपील कर रहे थे। इस बारे में उन्हें टेक्स्ट मैसेज भेजे गये थे। साथ ही वेयरहाउस में कर्मचारियों के कुछ समूहों के साथ अधिकारियों ने बैठकें की थीं। डू इट विदाउट ड्यूज़.कॉम नाम से एक यूनियन विरोधी वेबसाइट भी बनायी गयी। कर्मचारियों को भेजे गये सन्देशों में कहा गया कि कम्पनी अपने बारे में बोलने का अधिकार ख़ुद अपने आपको देगी! यूनियन को बदनाम करने के लिए इस प्रकार का झूठा प्रचार किया गया कि यूनियन एक बिज़नेस है, जिसके पदाधिकारी बिना कोई काम किये कर्मचारियों से चन्दा लेते हैं! चूँकि इन्हीं पूँजीपतियों ने ऐसी जेबी यूनियनें भी बना रखी हैं, जो वाक़ई एक धन्धा हैं और जिनके पदाधिकारी वाक़ई मुफ़्तख़ोरी और चन्दाख़ोरी करते हैं, इसलिए इस प्रकार के दुष्प्रचार के मज़दूरों के बीच असर की गुंजाइश थी। यानी मालिक अपने कुकर्म का ठीकरा यूनियन की पूरी सोच पर फोड़कर मज़दूरों को गुमराह करना चाहते थे।

ख़बरों के मुताबिक़ अमेज़न ने फ़ेसबुक पर कई यूनियन विरोधी विज्ञापन दिये, जिनमें कर्मचारियों से यूनियन गठन के ख़िलाफ़ वोट डालने का आह्वान किया गया था। अमेज़न कम्पनी का अलाबामा स्थित वेयरहाउस मार्च 2020 में बना था। यहाँ यूनियन बनाने के लिए कर्मचारियों ने अर्ज़ी पिछले नवम्बर में दायर की। उस आवेदन पर दो हज़ार से ज़्यादा कर्मचारियों के दस्तख़त थे। ज़ाहिर है कि शोषण और दमन अब उस सीमा पर पहुँच चुका था जहाँ यूनियन के बारे में कम्पनी के दुष्प्रचार का मज़दूरों पर असर कम हो रहा था और मज़दूर इस बात को शोषण और दमन के अपने तजुरबे से समझ गये थे यूनियन के बिना अपनी आर्थिक माँगों के लिए वे लड़ ही नहीं सकते हैं।

अमेज़न उन कम्पनियों में है, जिसके मुनाफ़े में कोरोना महामारी के दौरान भारी इज़ाफ़ा हुआ है। इसके संस्थापक और सीईओ जेफ़ बेजॉस की सम्पत्ति इस दौरान 70 अरब डॉलर बढ़ गयी। अब उनकी कुल सम्पत्ति 185 अरब डॉलर के क़रीब है। जब भी आर्थिक संकट गहराता है तो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की बुरी हालत के बावजूद जो सबसे बड़े पूँजीपति होते हैं, उनकी पूँजी में बढ़ोत्तरी होती ही है क्योंकि इस दौरान वे तमाम छोटी पूँजियों को निगल जाते हैं, जो कि संकट के दौर में बच नहीं पातीं। साथ ही, ऑनलाइन होने वाले कारोबार में भी लॉकडाउन के दौरान बढ़ोत्तरी होना लाज़िमी था। नतीजतन, पहले से ही संकटग्रस्त पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के कोरोना महामारी के दौरान और भी बुरी तरह संकट की गिरफ़्त में आने के बावजूद जो दुनिया के सबसे बड़े पूँजीपति थे, जैसे कि जेफ़ बेजॉस, उनकी पूँजी में भारी बढ़ोत्तरी हुई। हर संकट में ऐसा होता है, जैसा कि मार्क्स ने 200 साल पहले ही बता दिया था।

अमेज़न पर आरोप रहा है कि उनकी कम्पनी के पास कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए कार्यस्थलों पर पर्याप्त इन्तज़ाम नहीं हैं। महामारी के दौरान भी ये कर्मचारी बिना पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था के काम करते रहे हैं। इण्टरनेट युग की इन कम्पनियों में मैन्युफ़ैक्चरिंग की कम्पनियों की तरह यूनियन गठन का चलन नहीं रहा है। अमेज़न के कर्मचारियों का आरोप है कि उनमें आपस में संवाद ना रहने के कारण मैनेजर उनसे दुर्व्यवहार करते हैं। ऐप के ज़रिए उनके ख़िलाफ़ अनुशासनात्मक कार्रवाई कर दी जाती है। बर्ख़ास्तगी तक हो जाती है जबकि उनके लिए अपील करना और अपना पक्ष रखना मुश्किल बना रहता है। एक मामले में आरोप लगा कि जब एक महिला एरिया मैनेजर ने लैंगिक भेदभाव और यौन उत्पीड़न की शिकायत की, तो उसे बर्ख़ास्त कर दिया गया। ऐसी ही घटनाओं के बाद यूनियन बनाने की मुहिम ने ज़ोर पकड़ा था।

अमेज़न के मज़दूरों की यह जीत पूरी दुनिया के मज़दूरों के लिए महत्व रखती है। हमें अमेज़न के अपने जुझारू भाइयों व बहनों को बधाई देनी चाहिए और उनसे सीखना चाहिए कि किस तरह से दुनिया की सबसे ताक़तवर कम्पनियों में से एक से टकराकर उन्होंने अपनी यूनियन बनाने में कामयाबी हासिल की। यह भारत के हम मज़दूरों के लिए विशेष महत्व रखता है क्योंकि भारत में 94 प्रतिशत मज़दूर किसी यूनियन के तहत संगठित नहीं हैं और नतीजतन उन्हें अपने मालिकों की मनमानी को चुपचाप सहने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

दिल्ली मेट्रो में काम कर रहे सफ़ाई कर्मचारियों के बदतर हालात

– भारत

देश की राजधानी दिल्ली दुनियाभर में अपनी मेट्रो सेवा के लिए मशहूर है। चमचमाती मेट्रो की चमक के पीछे दरअसल उन श्रमिकों के ख़ून पसीने की मेहनत है जिनका कहीं ज़िक्र तक नहीं किया जाता। केन्द्र राज्य के स्वामित्व वाली दिल्ली मेट्रो में भारत सरकार (50 प्रतिशत) तथा दिल्ली सरकार (50 प्रतिशत) का बराबरी का मालिकाना है। जब भी मेट्रो से होने वाले अकूत मुनाफ़े पर गाल बजाना हो तो दोनों ही सरकारें अपनी दावेदारी पेश करने लगती है। लेकिन वहीं जब यहाँ काम करने वाले श्रमिक अपने हक़ अधिकार की माँग करते हैं तो दोनों ही सरकारें कन्नी काटती रहती हैं। दिल्ली मेट्रो भारत का सबसे बड़ा और सबसे व्यस्त मेट्रो रेल सिस्टम है, जिसके 230 स्टेशनों से रोज़ाना लाखों-लाख लोग सफ़र करते हैं। दिल्ली मेट्रो अपनी व्यस्तता, बड़े नेटवर्क, यात्रियों की संख्या के अलावा जिस चीज़ के लिए दुनियाभर में जानी जाती है वह है इसकी साफ़-सफ़ाई। इसके स्टेशनों से लेकर कोचों तक की शानदार सफ़ाई। उसकी चमक को बरक़रार रखने का काम करते हैं मेट्रो में काम करने वाले हाउस कीपिंग स्टाफ़।

ये श्रमिक दिनों-रात मेहनत करते हैं और उसके एवज़ में उन्हें महज़ नाममात्र का वेतन मिलता है। सरकारी उपक्रम में काम करने वाले ये श्रमिक भयंकर शोषण-उत्पीड़न का शिकार हैं। इनके लिए कोई श्रम क़ानून लागू नहीं होता। ठेकेदारी प्रथा के जुए के नीचे पिस रहे इन श्रमिकों के रोज़गार की कोई गारण्टी नहीं है। दिल्ली सरकार द्वारा तय किये गये न्यूनतम वेतन से मीलों दूर इन श्रमिकों को आम तौर पर साढ़े दस हज़ार रुपये मासिक वेतन दिया जाता है। ईएसआई, पीएफ़ आदि काटे जाते हैं किन्तु कोई बोनस नहीं दिया जाता है। सालों साल से काम कर रहे श्रमिकों को डीएमआरसी अपना कर्मचारी नहीं मानती है। चौदह-चौदह साल से काम कर रहे श्रमिक अस्थायी श्रमिक के तौर पर काम कर रहे हैं। सालों से काम कर रहे श्रमिकों का हर कुछ अन्तराल में ठेका बदल दिया जाता है। उन्हीं श्रमिकों को नये ठेके के तहत दुबारा काम पर रखा जाता है और उनका पुराना रिकॉर्ड हटा दिया जाता है।

इस तरह पुराने श्रमिकों को काग़ज़ों पर नये श्रमिक के तौर पर दिखाया जाता है। इस गोरखधन्धे के भीतर भी एक और गोरखधन्धा है। काम पर उन्हीं श्रमिकों को वापस रखा जाता है जो रिश्वत दे सकते हैं। हर बार जब श्रमिकों का टेण्डर बदला जाता है तब उनसे दस-दस हज़ार रुपये वसूले जाते हैं। यह उनके एक महीने का वेतन है। पिछली बार जो श्रमिक यह राशि नहीं दे पाये उन्हें नये टेण्डर के तहत काम पर वापस नहीं रखा गया। दसियों साल से काम कर रहे श्रमिक जो रिश्वत की राशि नहीं दे पाये, उन्हें अपने काम से हाथ धोना पड़ा। पिछली बार के टेण्डर के बाद तो श्रमिकों की पगार को बढ़ाने के बजाय उल्टा घटा ही दिया गया है। वेतन साढ़े दस हज़ार से दस हज़ार कर दिया गया है। ठेका कम्पनियाँ काग़ज़ों पर सभी नियम क़ानून को लागू होता हुआ दिखाती हैं। कम्पनियाँ काग़ज़ों पर श्रमिकों को 724 रुपये लेकिन असल में मात्र 384 रुपये दिहाड़ी देती हैं। अभी यह टेण्डर पीली, हरी लाइन में बदला है और अन्य लाइनों में भी जल्द ही पुराने टेण्डर की अवधि समाप्त हो जायेगी। इसके अलावा सुपरवाइज़र, मैनेजर द्वारा दुर्व्यवहार किया जाना आम बात है। हर मेट्रो पर जितने श्रमिकों की ज़रूरत होती है उससे संख्या उनकी कम होती है, इसी कारण काम का बोझ भी उनपर दुगुना होता है।

दिल्ली मेट्रो रेल कॉरपोरेशन के ठेका श्रमिकों की अपनी पंजीकृत क्रान्तिकारी यूनियन है, दिल्ली मेट्रो रेल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (डी.एम.आर.सी.डब्ल्यू.यू.)। यह यूनियन ठेका श्रमिकों द्वारा ही बनायी गयी है, जो पहले भी उनके कई संघर्ष सफलतापूर्वक लड़ चुकी है। यूनियन ने ठेका कम्पनियों तथा मुख्य नियोक्ता डीएमआरसी द्वारा की जा रही इस कारस्तानी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी। यूनियन की तरफ़ से डीएमआरसी व आरएलसी भवन में ज्ञापन दिया गया और पूरे मसले पर सवाल उठाया गया, जिसके जवाब में डीएमआरसी महज़ गोल-गोल बातें बनाती रही। आज ठेका श्रमिकों को अपनी यूनियन के बैनर तले एकजुट होकर डीएमआरसी तथा ठेका कम्पनियों के ख़िलाफ़ ज़ोरदार संघर्ष करने की ज़रूरत है। तभी जाकर इनकी मनमानियों पर पाबन्दी लगायी जा सकेगी। श्रमिकों के लिए न्यूनतम वेतन, ईएसआई-पीएफ़, पेंशन, आठ घण्टे का कार्यदिवस, डबल रेट के साथ स्वैच्छिक ओवरटाइम के अधिकारों को लाग् करवाया जा सकेगा।

मेहनतकश और युवा आबादी पर टूटता बेरोज़गारी का क़हर

– अविनाश

कौन-सा घुन है जो हमारे युवाओं को भीतर ही भीतर खाये जा रहा है? उम्मीदों और सपनों से भरी उम्र में नाउम्मीदी चुप्पी, अकेलेपन और मौत का दामन क्यों थाम रहे हैं इस देश के नौजवान?

कविता कृष्णपल्लवी के एक लेख की ये पंक्तियाँ देश में महामारी का रूप ले चुकी बेरोज़गारी और इससे पैदा होने वाली निराशा, अवसाद और आत्महत्याओं के हालात पर सवाल उठाती हैं। 1990 के दशक में निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से ही बेरोज़गारी का संकट भयंकर होता जा रहा है। फ़ासिस्टों के "अच्छे दिन" और "रामराज्य" में बेरोज़गारी सुरसा की तरह मुँह खोले नौजवानों को लीलती जा रही है। इलाहाबाद, पटना, कोटा, जयपुर जैसे शहर छात्रों-युवाओं के लिए क़ब्रगाह बन चुके हैं। हालात इतने बदतर हो चले हैं कि अकेले अप्रैल के महीने में इलाहाबाद में लगभग 35 छात्रों ने आत्महत्या कर ली। एनसीआरबी के आँकड़ों के मुताबिक़ 2019 की तुलना में 2020 में 18-45 साल की उम्र के युवाओं की आत्महत्या में 33 फ़ीसदी का इजाफ़ा हुआ है, जोकि 2018 से 2019 के बीच 4 फ़ीसदी था। ये महज़ आँकड़े नहीं हैं बल्कि देश की जीती-जागती तस्वीर है। ये आत्महत्याएँ नहीं, बल्कि मानवद्रोही मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था के हाथों की गयी निर्मम हत्याएँ हैं।

दरअसल मालिकाने पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था अपनी स्वाभाविक गति से समाज में एक तरफ़ कुछ लोगों के लिए विलासिता की मीनारें खड़ी करती जाती है तो दूसरी ओर आम आबादी समेत करोड़ों-करोड़ छात्रों-युवाओं को ग़रीबी और भविष्य की अनिश्चितता के अँधेरे में ढकेलती है। मुनाफ़ा पूँजीवादी व्यवस्था की चालक शक्ति होता है। आज विश्व पूँजीवाद मुनाफ़े की गिरती दर के असमाधेय संकट के दौर से गुज़र रहा है। पूँजीवादी होड़ से पैदा हुई इस मन्दी की क़ीमत छँटनी, तालाबन्दी, भुखमरी, दवा-इलाज के अभाव, बेरोज़गारी आदि रूपों में मेहनतकश वर्ग को ही चुकानी पड़ रही है।

हाल ही में आये सीएमआईई के आँकड़े बताते हैं कि 2017-2022 के बीच मोदी के नेतृत्व वाले फ़ासिस्टों के "रामराज्य" में आबादी की तुलना में कामगारों में संख्या 46 फ़ीसदी से घटकर 40 फ़ीसदी पर आ गयी है। दूसरे शब्दों में कहें तो हर साल "2 करोड़ नौकरी" देने का सपना दिखाकर सत्ता में आयी भाजपा सरकार के कार्यकाल में इन पाँच सालों के भीतर आबादी की तुलना में 2 करोड़ 10 लाख नौकरियाँ घटी हैं। अक्सर आँकड़ो की धाँधलेबाज़ी कर भाजपा सरकार ईपीएफ़ओ (कर्मचारी भविष्य निधि संगठन), ईएसआईसी (कर्मचारी राज्य बीमा निगम) और एनपीएस (नयी पेंशन योजना) से जुड़ने वाले सदस्यों की संख्या को पैदा होने वाले रोज़गार की संख्या बता देती है। लेकिन इस प्रक्रिया में बहुत चालाकी से ईपीएफ़ओ, ईएसआईसी और एनपीएस से बाहर होने वाले लोगों की संख्या को छुपा लिया जाता है। फ़रवरी-2022 में ईपीएफ़ओ से जुड़ने वाले नये सदस्यों की संख्या जहाँ 8.48 लाख रही, जबकि 9.35 लाख लोग इससे बाहर हो गये। इसी तरह से ईएसआईसी और एनपीएस के तहत जुड़ने वाले नये सदस्यों की संख्या में क्रमशः 3.3 और 0.59 फ़ीसदी की कमी आयी है। भारत में अभी लगभग 90 करोड़ लोग रोज़गार के योग्य हैं, जिसमें से 18-45 आयु वर्ग के युवाओं की हिस्सेदारी 72 फ़ीसदी है। महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय है, 1990-91 की निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से ही श्रमबल में महिलाओं की भागीदारी में जारी गिरावट अब भयंकर स्तर पर पहुँच चुकी है। सीएमआईई के हालिया आँकड़ों के मुताबिक़ योग्यता के बावजूद सिर्फ़ 9 फ़ीसदी महिलाओं के पास या तो काम है या काम की तलाश जारी रखे हुए हैं।

विश्व बैंक द्वारा जारी एक आँकड़े के मुताबिक़ भारत में महिला श्रमबल की भागीदारी जून-2020 में 20.3 फ़ीसदी थी। ग़ौरतलब है कि यह आँकड़ा 1990 में 30.3 फ़ीसदी था। बेरोज़गारी का आलम यह है कि काम करने योग्य कुल आबादी में से 45 करोड़ से ज़्यादा लोग अब काम की तलाश भी छोड़ चुके हैं। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (एमएसएमई) (बक़ौल वित्त मंत्री जो देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है) के जॉब पोर्टल पर नौकरी चाहने वालों की संख्या में 86 फ़ीसदी की कमी आयी है वहीं पदों की संख्या में 71 फ़ीसदी की कमी आयी है। पिछले दिनों एमएसएमई के टूल रूम्स और तकनीकी संस्थानों से 4,77,083 युवा पास होकर निकले हैं लेकिन पोर्टल पर केवल 133 रिक्तियाँ उपलब्ध हैं। यह है बेशर्म मोदी सरकार के रोज़गार पैदा करने के नाम पर परोसे जा रहे झूठ की सच्चाई!

भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास से खेती के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर मशीनीकरण को बढ़ावा मिल रहा है। जिसकी वजह से कृषि क्षेत्र में आवश्यक श्रम शक्ति में लगातार गिरावट की स्थिति बनी हुई है, जिससे एक ओर कुल खेतिहर आबादी कम हुई है और वहीं दूसरी ओर ग्रामीण सर्वहारा वर्ग का आकार लगातार बढ़ता जा रहा है। इसमें से एक बड़ी आबादी काम की तलाश में शहरों की तरफ़ पलायन कर रही है। स्टेटिस्टा द्वारा दिये गये इन आँकड़ों के अनुसार, भारत में साल 2009 से 2019 तक आर्थिक क्षेत्रों में कार्यबल का वितरण देखने से साफ़ पता चलता है कि इन 10 सालों में कृषि क्षेत्र में कार्यबल 52.5 से घटकर 42.6 प्रतिशत रह गया था।

अगर पूरे देश के स्तर पर बात की जाये तो बेरोज़गारी की दर मार्च-2022 की तुलना में अप्रैल-2022 में 0.23 फ़ीसदी से बढ़कर 7.83 फ़ीसदी पहुँच गयी है। दरअसल बेरोज़गारी से परेशानहाल बहुत बड़ी आबादी बढ़ती उम्र के साथ अपना जीविकोपार्जन ठेला, रिक्शा चलाने या रेहड़ी-खोमचा लगाने को मजबूर है। इस प्रकार जो आबादी आज श्रम बाज़ार में लगी हुई है उसमें से भी बहुत बड़ी आबादी प्रच्छन्न् बेरोज़गारी की शिकार है और कृषि के क्षेत्र में प्रच्छन्नपन्न बेरोज़गारी की स्थिति सबसे भयानक है जहाँ एक सर्वे के मुताबिक़ कृषि कार्यों में लगी आधी से ज़्यादा आबादी आज प्रच्छन्न बेरोज़गारी की मार झेल रही है। इस बड़ी आबादी को बेशर्म मोदी सरकार रोज़गारशुदा आबादी का दर्जा देकर रोज़गार पैदा करने के खोखले आँकड़े पेश कर रही है और ख़ुद ही अपनी पीठ थपथपा रही है। इस प्रकार बेरोज़गारी का जो आँकड़ा 7-8 फ़ीसदी दिख रहा है वह असल में इससे कहीं अधिक है।

1990-91 के बाद से ही भारत में रोज़गार देने वाले मुख्य क्षेत्र उद्योग, कृषि और सेवा तीनों में आबादी के हिसाब से कार्यबल के बीच-बीच में उतार चढ़ाव के बीच मुख्य प्रवृत्ति घटने की है।

दरअसल बेरोज़गारों की सेना की मौजूदगी पूँजीवादी व्यवस्था की सेहत के लिए फ़ायदेमन्द होती है। इस सेना का आकार जितना बड़ा होता है पूँजीपतियों की मोल-भाव की क्षमता भी उतनी ज़्यादा होती है और किसी विशेष समय में बाज़ार में आये उछाल की वजह से श्रमशक्ति की बढ़ी हुई माँग की सप्लाई इसी आबादी से होती है। बेरोज़गारों की यह सेना मज़दूर वर्ग पर बेहद कम मज़दूरी में दयनीय स्थिति में भी काम करने का दबाव बनाये रखती है और बेहतर मज़दूरी और हालात की माँग करने वाले मज़दूरों की हड़ताल और आन्दोलनों को तोड़ने के लिए सस्ते मज़दूरों की सप्लाई का काम करती है। इसीलिए बेरोज़गारों की यह सेना पूँजीवादी उत्पादन के शुरुआती दौर से ही अस्तित्वमान है और इस व्यवस्था का अनिवार्य अंग बन चुकी है। और जब तक मज़दूरी की यह व्यवस्था क़ायम रहेगी तब तक बेरोज़गारी का पूर्ण उन्मूलन असम्भव है। सबको रोज़गार और सबको बेहतर जीवन केवल और केवल समता और न्याय पर टिकी समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव है।

जहाँगीरपुरी में हिंसा और मेहनतकशों के घरों पर सरकारी बुलडोज़र

(पेज 5 से आगे)

लिबरल, सामाजिक जनवादी वृन्दा करात के क़सीदे पढ़ते नहीं थक रहे कि किस तरह वो बुलडोज़र के सामने अकेले खड़ी हो गयीं। यही लोग 'आम आदमी पार्टी' को इन सब पर उसकी चुप्पी के लिए कोस रहे हैं। वहीं कुछ समय पहले मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी, लिबरल टाइप लोग फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई के लिए केजरीवाल का गुणगान कर रहे थे।

आँख-कान बन्द करके कभी इधर तो कभी उधर लुढ़कने वालों को तो बताते चलें कि आपके 'फ़ासीवादी योद्धा' की पार्टी सीपीआई(एम) ने चुनावों में आम आदमी पार्टी को समर्थन दिया था। इसके अलावा अलग-अलग समय पर ये दोनों एक साथ खड़े रहे हैं। तो आप भाजपा के ख़िलाफ़ हैं, 'आम आदमी पार्टी' भाजपा की बी टीम है और सीपीआई(एम) आम आदमी पार्टी का समर्थन करती है! आख़िर ये रिश्ता क्या कहलाता है?

हमें ये समझना चाहिए कि किसी एक घटना के विरोध करने से समग्र राजनीतिक दिशा का मूल्यांकन नहीं हो सकता। बुर्जुआ राजनीति में भी ऐसे तमाम लोग हैं जो मोदी का विरोध करते हैं। टीएमसी की महिला सांसद महुआ मोइत्रा भी लोकसभा में फ़ासीवाद पर लम्बी चौड़ी बातें करती है, लेकिन क्या टीएमसी फ़ासीवाद-विरोधी पार्टी है? यह मूल सवाल है। यही बात एक दूसरे सन्दर्भ में सीपीआई (एम) पर भी लागू होती है। असल में सीपीआई (एम) फ़ासीवाद को हराने के लिए जो मोर्चा बनाती है, वो कांग्रेस और आम आदमी पार्टी के बिना बनता ही नहीं है। एक समय में इतनी बड़ी ट्रेड यूनियन होने के बावजूद भी कभी भी सीपीआई (एम) ने सीधे तौर पर साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग को संगठित कर कोई अभियान नहीं छेड़ा।

2020 में उत्तर-पूर्वी दिल्ली में हिन्दू-मुस्लिम दंगे मोदी सरकार द्वारा प्रायोजित हिंसा थी, जिसमें फ़ासीवादियों के गिरोह द्वारा अल्पसंख्यकों पर हमला किया गया था। इस तरह के दंगों में हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही धर्म के आम मेहनतकश लोग मारे जाते हैं, घायल होते हैं, उनके घर जलते हैं और इन फ़ासीवादियों द्वारा दोनों ही धर्म के भाइयों और बहनों के बीच डर और नफ़रत फैलाने का काम किया जाता है। यह सारा धार्मिक उन्माद इसलिए फैलाया जाता है कि आम मेहनतकश आबादी यह देख ही न पाये कि सरकार और पूँजीपति वर्ग द्वारा किस प्रकार हमें लूटा जा रहा है। जब साम्प्रदायिकता की यह आग भड़कती है तो हिन्दू आम मेहनतकश आबादी भी उसकी गिरफ़्त में आती है। यह हाल में हुई एक घटना से भी साफ़ हो गया जब एक हिन्दू सिक्योरिटी गार्ड को फ़ासीवादी गौरक्षकों की उन्मादी भीड़ खींचकर ले गयी और उसे जान से मार डाला। इस फ़ासीवादी उन्मादी भीड़ के निशाने पर मुसलमान ही नहीं, बल्कि सारे देश में ग़रीब मेहनतकश हिन्दू आबादी भी आ रही है। और यह सारा प्रपंच रचा ही इसलिए गया है कि आम मेहनतकश आबादी अपने असली दुश्मन यानी फ़ासीवादी मोदी सरकार और समूची पूँजीवादी व्यवस्था को पहचानने की बजाय साम्प्रदायिक उन्माद में बहकर एक-दूसरे के साथ ही सिरफुटौव्वल करती रहे ताकि अम्बानियों-अडानियों को मेहनत और कुदरत की लूट की पूरे छूट देने का काम मोदी सरकार सलीक़े से करती रहे। आम मेहनतकश आबादी का एक हिस्सा भी राजनीतिक चेतना की कमी के कारण इस साज़िश का शिकार हो जाता है। हम वर्ग सचेत मेहनतकशों को अपने सारे भाइयों-बहनों को समझाना होगा कि इस षड्यंत्र में फँसने का अर्थ है आत्महत्या करना।

फ़ासीवाद मोदी सरकार की रणनीति क्या है?

फ़ासीवादी मोदी सरकार की यह रणनीति है कि आम मेहनतकश आबादी को बाँटकर रखो, धार्मिक उन्माद फैलाकर उन्हें आपस में लड़ाओ, किसी नक़ली गौरवशाली अतीत और "रामराज्य" का सपना दिखाओ और इन हथकण्डों से बेवक़ूफ़ बनाकर उसे फ़ासीवादी शासन और पूँजीवाद का विरोध कर पाने में अक्षम बनाओ ताकि पूँजीपतियों-मालिकों-ठेकेदारों और तमाम धन्नासेठों का शासन जारी रहे। दिल्ली सहित देश की मेहनतकश आबादी को फ़ासीवादियों के इस एजेण्डे को कामयाब नहीं होने देना है और हमें अपना वर्ग भाईचारा क़ायम करना होगा, किसी भी प्रकार के धार्मिक उन्माद में नहीं बहना होगा, सभी धर्मों के मेहनतकश लोगों की एकता क़ायम करनी होगी।

विभिन्न इलाक़ों में मई दिवस के कार्यक्रमों की एक रिपोर्ट

मई दिवस का नारा, सारा संसार हमारा

136वें मज़दूर दिवस के अवसर पर देश की तमाम क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों व संगठनों द्वारा मई दिवस की विरासत को याद करते हुए तथा बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी, श्रम क़ानूनों पर हमले के ख़िलाफ़ अलग-अलग जगहों पर विरोध प्रदर्शन का आयोजन किया गया। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार से लेकर देशभर के अन्य इलाक़ों की क्रान्तिकारी यूनियनों और संगठनों ने मिलकर मोदी सरकार द्वारा लगातार श्रम क़ानूनों पर किये जाने वाले हमलों समेत देशभर में बढ़ती महँगाई के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन, गोष्ठी, सभा व अन्य कार्यक्रमों का आयोजन किया।

दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर आयोजित विरोध प्रदर्शन में दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन, बिगुल मज़दूर दस्ता, दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन, बवाना क्षेत्र औद्योगिक मज़दूर यूनियन, दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन समेत तमाम अन्य संगठनों ने भागीदारी की। ग़ौरतलब है कि यह प्रतिरोध प्रदर्शन दिल्ली के मण्डी हाउस से जन्तर-मन्तर तक रैली के रूप में आयोजित होना था। लेकिन प्रशासन ने "शान्ति व्यवस्था" क़ायम करने का हवाला देकर इस कार्यक्रम के आयोजन की अर्ज़ी को ख़ारिज कर दिया। लेकिन दिल्ली में जब खुलेआम साम्प्रदायिक नारे लगते हैं, जब मस्जिदों में घुसकर संघ के फ़ासीवादी गुण्डे भगवा झण्डे लगा देते हैं, तब यही दिल्ली पुलिस मूकदर्शक बनकर देखती रहती है। वहीं दिल्ली की आम मेहनतकश आबादी जब अपनी माँगों को लेकर शान्तिपूर्ण प्रदर्शन करती है, तब अचानक ही दिल्ली पुलिस को "अशान्ति" फैलने का डर सताने लगता है। लेकिन दिल्ली पुलिस के इन तमाम हथकण्डों के बावजूद मज़दूरों और उनकी क्रान्तिकारी यूनियन ने जन्तर-मन्तर पर विरोध प्रदर्शन सफलतापूर्वक आयोजित किया। वहीं गुड़गाँव के ऑटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूरों के बीच मज़दूर दिवस के दिन सरकार की इन मज़दूर विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन द्वारा प्रतिरोध सभा का आयोजन किया गया।

उत्तर प्रदेश के भी कई इलाक़ों में मज़दूर दिवस के अवसर पर कई कार्यक्रम किये गये। बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से इलाहाबाद, गोरखपुर, अम्बेडकरनगर, लखनऊ, मथुरा समेत कई जगहों पर मई दिवस पर कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। इलाहाबाद में एनआरएमयू के हॉल में 'मई दिवस की विरासत और हमारा वर्तमान कार्यभार' विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। साथ ही इलाहाबाद में लेबर चौक पर भी मज़दूरों के बीच सभा का आयोजन व पर्चा वितरण किया गया। गोरखपुर के बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र में बिगुल मज़दूर दस्ता और टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन की ओर से 'मशीन' नाटक मंचन किया गया। इसके बाद बरगदवा औद्योगिक इलाक़े में जुलूस निकाला गया। लखनऊ के खदरा इलाक़े में और तालकटोरा औद्योगिक क्षेत्र में मई दिवस के अवसर पर नुक्कड़ सभाएँ की गयीं व पर्चे बाँटे गये। मथुरा में मई दिवस के अवसर पर गोष्ठी का आयोजन किया गया और मोदी सरकार की मज़दूर विरोधी नीतियों और साम्प्रदायिकता के विरोध में जुलूस निकाला गया। बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा उत्तराखण्ड के हरिद्वार में नुक्कड़ सभा व जन सम्पर्क अभियान चलाते हुए व्यापक पर्चा वितरण किया गया। वहीं हरियाणा के नरवाना ज़िले में मज़दूर आबादी के बीच बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा व्यापक पर्चा वितरण किया गया।

मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI) द्वारा उत्तर प्रदेश के अम्बेडकरनगर ज़िले में मज़दूर दिवस की पूर्व संध्या पर जनसभा का आयोजन किया गया। इस सभा में सांस्कृतिक कार्यक्रम व सफ़दर हाशमी के मशहूर नाटक 'मशीन' का मंचन किया गया। साथ ही आज़मगढ़ ज़िले में आरडब्ल्यूपीआई द्वारा नुक्कड़ सभा का आयोजन किया गया। महाराष्ट्र के मानखुर्द में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया और रैली निकाली गयी। अहमदनगर, महाराष्ट्र में रैली व नुक्कड़ सभा का आयोजन किया गया। बिहार में आरडब्ल्यूपीआई द्वारा मई दिवस के अवसर पर सभा आयोजित की गयी व 'मशीन' नाटक का मंचन किया गया। हरियाणा में क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन और भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा मनरेगा मज़दूरों के बीच सभा व सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम के दौरान 'देश को आगे बढ़ाओ' नाटक का मंचन भी किया गया।

मज़दूर दिवस का यह दिन अमेरिका के मज़दूरों के राजनीतिक संघर्ष और क़ुर्बानी को याद कर दुनियाभर में मनाया जाता है। 1 मई 1886 को अमेरिका के लाखों मज़दूरों ने अपनी राजनितिक माँग 'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे आराम और आठ घण्टे मनोरंजन' के लिए एक साथ हड़ताल करने का फ़ैसला किया। हड़ताल में क़रीब 11,000 फ़ैक्टरियों के कम से कम 3 लाख 80 हज़ार मज़दूर शामिल हुए। शहर के मुख्य मार्ग 'मिशिगन अवेन्यु' पर मज़दूर नेता अल्बर्ट पार्सन्स के नेतृत्व में शानदार जुलूस निकाला गया। मज़दूरों को संगठित होता देख डरे हुए मालिक-पूँजीपतियों ने भी प्रतिक्रिया स्वरूप मज़दूर वर्ग पर बार-बार हमले किये। इन हमलों के ख़िलाफ़ 4 मई को शहर के मुख्य बाज़ार 'हे मार्केट स्क्वायर' में जनसभा का आयोजन किया गया। सभा के अन्त में पूँजीपतियों के इशारों पर षड्यंत्र के तहत पुलिस ने बम फिंकवा दिया और लोगों को तितर-बितर कर दिया। इसके बाद उल्टा दोष भी मज़दूरों पर ही मढ़ दिया गया और शान्तिपूर्ण सभा के ऊपर पुलिस ने अन्धाधुन्ध गोलियाँ और लाठियाँ बरसा दीं। इस घटना में छः मज़दूर मारे गये और 200 से ज़्यादा घायल हुए। घटना के दौरान मज़दूरों के रक्त से लाल हुआ कपड़ा ही मेहनतकश वर्ग का झण्डा बना। बम काण्ड में मज़दूर नेताओं को फँसाकर जेल में बन्द कर दिया गया। आठ मज़दूर नेताओं को इस घटना का दोषी क़रार दे दिया गया। मज़दूर वर्ग के इन महान पूर्वजों के नाम थे: अल्बर्ट पार्सन्स, आगस्टस स्पाईस, जार्ज एंजेल, अडोल्फ़ फ़िशर, सैमुएल फ़ील्डेन, माइकल शवाब, लुईस लिंग्ग और ऑस्कर नीबे। इनमें से सिर्फ़ सामुएल फ़िल्डेन ही 4 मई को वारदात के समय घटनास्थल पर मौजूद थे बाक़ी तो वहाँ पर थे भी नहीं! 20 अगस्त 1887 को इस मुक़दमे का फ़ैसला सुनाया गया, जिसमें ऑस्कर नीबे के अलावा सभी मज़दूर नेताओं को फाँसी की सज़ा सुनायी गयी। 1 मई से शुरू हुआ मज़दूर वर्ग का संगठित संघर्ष यहीं पर नहीं रुका, बल्कि इसके बाद दुनियाभर में 'काम के घण्टे आठ करो' का नारा गूँज उठा। हारकर पूँजीपति वर्ग को काम के घण्टे आठ के अधिकार को क़ानूनी मान्यता देकर स्वीकारना पड़ा और मज़दूर वर्ग के नायकों का बलिदान रंग लाया। तब से लेकर अब तक 136 साल बीत चुके हैं, इस दौरान मज़दूर वर्ग ने अनगिनत संघर्षों और क़ुर्बानियों के कीर्तिमान स्थापित किये।

ग़ौरतलब है कि इसी संघर्ष और क़ुर्बानी को याद करते हुए दिल्ली के अलग-अलग इलाक़ों में मई दिवस से पहले मज़दूरों-मेहनतकशों के बीच मई दिवस की विरासत को लेकर अभियान चलाया गया। दिल्ली के शाहाबाद डेरी इलाक़े में रहने वाली घरेलू कामगारों, बवाना-वज़ीरपुर के कारख़ाने में काम करने वाले मज़दूरों से लेकर करावलनगर-ख़जूरी में रहने वाले लोगों को मज़दूर वर्ग के इस गौरवशाली इतिहास से परिचित कराया गया। उन्हें यह भी बताया गया कि आज देशभर में किस प्रकार फ़ासीवादी ताक़तें एक तरफ़ तो मज़दूरों के हक़ अधिकारों पर हमले कर रही हैं, लेबर कोड के ज़रिए श्रम क़ानूनों को ख़त्म करने का काम कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर मज़दूरों को बाँटने के लिए उनके बीच धर्म का ज़हर घोल रही हैं। जब-जब मज़दूरों पर महँगाई, बेरोज़गारी की मार पड़ती है, तब-तब यह फ़ासीवादी निज़ाम जनता के बीच धर्म के आधार पर फूट डालने का काम करता है। लेकिन आज मज़दूर वर्ग के सामने संशोधनवादी राजनीति का भी एक बहुत बड़ा ख़तरा मौजूद है, जो मज़दूरों के बीच रहकर उनकी पीठ पर छुरा मारने का काम करती है। देश में मौजूद तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें आज इसी काम को अंजाम दे रही हैं। ये ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के ग़ुस्से को अर्थवाद की अन्धी गली में भटकने के लिए छोड़ देती हैं। और साल में एक या दो दिन महज़ रस्मी क़वायद के रूप में हड़ताल कर देते हैं। शिकागो के मज़दूरों ने अपनी राजनीतिक माँग को लेकर जो संघर्ष किया था, ये संशोधनवादी ट्रेड यूनियनें उस गौरवशाली संघर्ष की विरासत भुला देने का काम कर रही हैं।

इसलिए आज मज़दूर वर्ग को इन तमाम पूँजीपतियों की दलाल, संशोधनवादी ट्रेड यूनियनों के ख़िलाफ़ मोर्चा खोल देना होगा। वहीं दूसरी ओर मज़दूरों के अधिकारों पर हमला कर पूँजीपति वर्ग के हित की नंगे रूप से सेवा करने वाली फ़ासीवादी मोदी सरकार के तमाम हथकण्डों को परास्त करते हुए अपनी असल माँगों पर एकजुट होना होगा। देशभर में हो रही तमाम साम्प्रदायिक हिंसा के विरुद्ध आज हमें सड़कों पर आना होगा। साथ ही आरएसएस-भाजपा की पैदाइश दंगाई भीड़ को भी सड़कों पर सबक़ सिखाना होगा। तभी जाकर हम मई दिवस के शहीदों की विरासत को सही रूप में अपना सकेंगे और एक बेहतर दुनिया बनाने की लड़ाई में मुक़म्मल जीत हासिल कर सकेंगे।

– केशव

मई दिवस को मज़दूर वर्ग के जुझारू संघर्ष की नयी शुरुआत का मौक़ा बनाओ!

(पेज 1 से आगे)

है, जिसका मक़सद अपनी सत्ता क़ायम करना होता है। एक राजनीतिक वर्ग के रूप में संगठित करने के लिए अपनी अतीत की गौरवशाली विरासत, उपलब्धियों और ग़लतियों से वाक़िफ़ होना अनिवार्य होता है। यही वजह है कि आज हमें अपने गौरवशाली अतीत और विरासत से परिचित होने की शिद्दत से ज़रूरत है।

हममें से कितने जानते हैं कि पूँजीवाद के पैदा होने के समय से ही सर्वहारा वर्ग मालिकों के वर्ग से लड़ रहा है? हममें से कितने जानते हैं कि अपनी शुरुआती लड़ाइयों से सीखते हुए मज़दूरों ने आगे चलकर पहले लगभग दस हफ़्तों के लिए 1871 पेरिस में अपनी सत्ता क़ायम की, जिसे पेरिस कम्यून के नाम से जाना जाता है? हममें से कितने जानते हैं उसके 15 वर्ष बाद 'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे मनोरंजन, आठ घण्टे आराम' के नारे के साथ एक इन्सानी ज़िन्दगी के हक़ के वास्ते शिकागो के मज़दूरों ने एक शानदार संघर्ष लड़ा जिसमें एल्बर्ट पार्सन्स, ऑगस्ट स्पाइस, एडोल्फ़ फ़िशर व जॉर्ज एंजेल जैसे हमारे वीर मज़दूर साथी शहीद हुए थे लेकिन जिनके संघर्ष के बूते दुनियाभर में आठ घण्टे के काम के दिन के हक़ को पूँजीपति वर्ग को अन्तत: स्वीकार करना पड़ा? आप में से कितने जानते हैं कि 1917 में रूस में हमारे ही जैसे मज़दूरों ने पहली व्यवस्थित सर्वहारा राज्यसत्ता स्थापित की और लगभग चार दशकों तक अपने देश में सर्वहारा सत्ता और समाजवाद के चमत्कारिक प्रयोग करके मज़दूरों-मेहनतकशों को बेरोज़गारी, ग़रीबी, भूख और अनिश्चितता से मुक्त कर दिया? हममें से कितने जानते हैं कि मज़दूर सत्ता और समाजवाद का एक और शानदार प्रयोग 1949 से 1976 के बीच चीन में हुआ जिसने अपनी आश्चर्यजनक कामयाबी से दुनिया को चौंका दिया? चूँकि हममें से कई लोग इसे नहीं जानते इसलिए आज भी उन्हें पता नहीं कि हम अतीत में भी पूँजीपतियों को हरा चुके हैं, उनसे सत्ता छीन चुके हैं। पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग न तो अजेय था और न ही अजेय है। आज वह बड़ा और ताक़तवर इसलिए नज़र आ रहा है क्योंकि हम अपने घुटनों पर गिरे हुए हैं। आज वह अजेय इसलिए दिख रहा है क्योंकि बेहद छोटा होने के बावजूद वह एक राजनीतिक वर्ग के रूप में संगठित है और हम बिखरे हुए हैं। वह हमसे ज़्यादा ताक़तवर नहीं है, बस वह राजनीतिक रूप से संगठित है। इसकी एक वजह यह भी है कि हम अपने इतिहास और अपनी विरासत, यानी दुनिया के मज़दूरों के शानदार इतिहास और विरासत से कट गये हैं, जिसका एक बेहद अहम हिस्सा मई दिवस का इतिहास भी है। नतीजतन, हममें एक पराजयबोध और निराशा आ जाती है क्योंकि हमें नहीं पता कि हम पहले भी जीत चुके हैं और फिर जीत सकते हैं। यह होता है अपनी विरासत से कट जाने का नतीजा।

यही वजह है कि पूँजीपति वर्ग अगर मई दिवस के नाम को मिटा नहीं सकता तो उसे महज़ रस्मअदायगी में तब्दील करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ता। हमें यह नहीं बताया जाता है कि मई दिवस का संघर्ष लड़ा ही क्यों गया था। हमारे लिए इसे एक रस्मअदायगी या छुट्टी का दिन मात्र बना दिया जाता है। इस काम में शासक वर्ग की सबसे बड़ी मदद करती हैं, संशोधनवादी पार्टियों (यानी नाम से सर्वहारा वर्गीय लेकिन वास्तव में पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली चुनावबाज़ पार्टियाँ) से जुड़ी ट्रेड यूनियनें जैसे कि सीटू, एटक, एक्टू आदि। इसके अलावा, खुले तौर पर पूँजीवादी पार्टियों की ट्रेड यूनियनें भी मई दिवस की शानदार विरासत पर धूल और राख डालने का काम करती हैं, जैसे कि बीएमएस, इण्टक आदि।

मई दिवस का संघर्ष महज़ वेतन-भत्ते में बढ़ोत्तरी के लिए किया गया संघर्ष नहीं था। यह एक राजनीतिक संघर्ष था जिसकी केन्द्रीय माँग थी मज़दूरों के लिए एक मानवीय जीवन का अधिकार हासिल करना। उस दौर में पूरी दुनिया में ही अलग-अलग जगहों पर दस, बारह, चौदह या सोलह घण्टों तक मज़दूरों से काम करवाया जाता था। मज़दूर के जीवन का अर्थ सिर्फ़ इतना था कि वह पूँजीपति के लिए उत्पादन करे, उसके लिए मूल्य और बेशी मूल्य पैदा कर उसे मुनाफ़ा पीटने में सक्षम बनाये, उसकी तिजोरियाँ भरे और यही करने में वह अपना शरीर गला दे, हड्डियों का चूरा बना दे और अपने ख़ून को सिक्कों में ढाल दे। अपने परिवार, अपने बच्चों के लिए स्तरीय भोजन, शिक्षा, चिकित्सा और आवास की उम्मीद करना तो दूर की बात थी, वह उनके साथ वक़्त भी नहीं बिता पाता था।

इन कार्य स्थितियों और जीवन स्थितियों के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने 1850 के दशक से ही ज़ोरदार तरीक़े से आवाज़ उठानी शुरू कर दी थी। ऑस्ट्रेलिया में कई जगहों पर तो मज़दूरों ने 1856 में ही अपने जुझारू संघर्ष के बूते 8 घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार जीत लिया था। ऑस्ट्रेलिया में पत्थरतराश मज़दूरों ने विक्टोरिया में आठ घण्टे के कार्यदिवस के लिए हड़ताल की और उसमें विजय भी हासिल की। लेकिन दुनिया में बाक़ी जगहों पर अभी भी उसे आम तौर पर 10 से 14-16 घण्टों तक काम करना पड़ता था। इसके विरुद्ध अमेरिका के मज़दूरों ने संघर्ष को बुलन्द किया। 1886 में 1 मई के दिन को शिकागो के मज़दूरों ने आम हड़ताल का दिन बनाने का निर्णय किया। माँग थी कार्यदिवस को आठ घण्टे का बनाने की। नारा था : "आठ घण्टे काम, आठ घण्टे मनोरंजन, आठ घण्टे आराम"। इस नारे के साथ 1 मई 1886 को शिकागो के मज़दूरों ने एक ऐसे ऐतिहासिक संघर्ष की शुरुआत की जो पूरे दुनिया के मज़दूरों के लिए एक मिसाल बन गया। 4 मई को हेमार्केट नामक स्थान पर मज़दूरों ने इस माँग को लेकर एक विशाल प्रदर्शन का आयोजन किया, जहाँ साज़िशाना तरीक़े से एक बम फिंकवाया गया और उसके बाद पुलिस ने मज़दूरों की सभा पर गोली चला दी, जिसमें चार लोगों की मौत हो गयी। सात पुलिसकर्मी भी इस टकराव में मारे गये। इसके बाद पुलिस ने ढूँढ़-ढूँढ़कर मज़दूर नेताओं की धरपकड़ की जिनमें से चार को बाद में एक नक़ली मुक़दमे में बिना किसी सुबूत के फाँसी दे दी। एक मज़दूर नेता ने जेल में ही आत्महत्या कर ली। बाद में अमेरिकी पूँजीपति वर्ग के नुमाइन्दों को भी यह स्वीकार करना पड़ा था कि यह मुक़दमा एक नाटक था, जिसमें मज़दूरों को आवाज़ उठाने के लिए सज़ा देने का निर्णय पहले ही किया जा चुका था।

1889 में द्वितीय इण्टरनेशनल ने, जो कि दुनियाभर की कम्युनिस्ट व मज़दूर पार्टियों का अन्तरराष्ट्रीय मंच था, पूरी दुनिया में 1 मई को मई दिवस मनाने का फ़ैसला किया क्योंकि यह मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष का एक प्रतीक बन चुका था। इसके साथ पूरी दुनिया में ही आठ घण्टे के कार्यदिवस का संघर्ष और आगे बढ़ा और 1900 के दशक से 1960 के दशक के बीच अधिकांश उन्नत पूँजीवादी देशों में मज़दूर वर्ग के इस संघर्ष के सामने पूँजीवादी सरकारों को झुकना पड़ा और आठ घण्टे के कार्यदिवस या सप्ताह में कुल 40 काम के घण्टे का क़ानून बनाना पड़ा। एशिया, अफ़्रीका और लातिन अमेरिका के कई देशों में भी इस दौर में आठ घण्टे के कार्यदिवस के क़ानून बने और जैसे-जैसे इन महाद्वीपों के देश औपनिवेशिक, अर्द्धऔपनिवेशिक या नवऔपनिवेशिक ग़ुलामी से आज़ाद होते गये, जनता के संघर्षों के दबाव में इन देशों में भी आठ घण्टे के कार्यदिवस के क़ानून बने।

उन्नत पूँजीवादी देशों में 1970 के दशक के पहले लगभग सभी औपचारिक व संगठित क्षेत्र के कार्यस्थलों पर यह क़ानून मोटे तौर पर लागू भी होता रहा, हालाँकि इन सभी देशों में पूँजीपति वर्ग ने अपने मुनाफ़े की दर को पहले जैसे स्तर पर बनाये रखने के लिए मज़दूरों की वास्तविक मज़दूरी को घटाने का प्रयास भी किया, जिसके ख़िलाफ़ मज़दूरों ने लगातार संघर्ष किया। 1970 के दशक से उन्नत पूँजीवादी देशों में भी अनौपचारिकीकरण यानी ठेकाकरण, कैज़ुअलाइज़ेशन और दिहाड़ीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत हुई हालाँकि यह प्रक्रिया 1990 के दशक तक ज़्यादा तेज़ गति से नहीं चल पायी और उन्नत देशों में अधिकांशत: प्रवासी मज़दूरों तक सीमित रही। मसलन, अमेरिका में अश्वेत मज़दूरों के अलावा मेक्सिकन, प्यूएर्तो रीकन, डोमिनिकन रिपब्लिक के प्रवासी मज़दूरों के ठेकाकरण, कैज़ुअलाइज़ेशन व दिहाड़ीकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ी। इन प्रवासी मज़दूरों के लिए कार्यदिवस भी आम तौर पर आठ घण्टे से ज़्यादा होने लगा। आज यह प्रक्रिया चरम पर पहुँच चुकी है जिसमें कि उन्नत देशों में भी प्रवासी मज़दूरों की कार्यस्थितियाँ बेहद बिगड़ चुकी हैं, उनके बहुतेरे श्रम अधिकार उनसे छीने जा चुके हैं, जिनमें आठ घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार भी शामिल है।

तथाकथित 'तीसरी दुनिया' के नवस्वाधीन देशों में, जो कि 1940 के दशक से 1990 के दशक के बीच आज़ाद हुए थे, पहले से ही एक विशाल अनौपचारिक सेक्टर और अनौपचारिक मज़दूरों की आबादी मौजूद थी। इनमें से बहुतेरे देशों में जो हुआ उसे कमोबेश भारत के उदाहरण से समझा जा सकता है। आज़ादी के तुरन्त बाद दो सौ साल की औपनिवेशिक ग़ुलामी के कारण भारत के आर्थिक रूप से कमज़ोर पूँजीपति वर्ग ने जनता की बचत को एकत्र करके पब्लिक सेक्टर का एक विशाल ढाँचा खड़ा किया। पूँजीपति वर्ग को इसी के ज़रिए विशाल ऋण दिये गये, जिसके बूते भारत के पूँजीपति वर्ग के लिए अपने पैरों पर खड़ा हो पाना सम्भव हुआ। बाद में चलकर कुछ दशकों बाद इन ऋणों को माफ़ कर दिया गया। यानी भारत के टाटा-बिड़ला जैसे बड़े पूँजीपति जनता की गाढ़ी मेहनत की कमाई के बूते ही अपने पैरों पर खड़े हुए, अपने "उद्यम" के बूते नहीं! पूँजीपति वर्ग उन क्षेत्रों में निवेश नहीं करना चाहता था जिनसे तुरन्त मुनाफ़ा नहीं कमाया जा सकता है। जैसे कि अवसंरचनागत उद्योग, भारी रासायनिक, इंजीनियरिंग उद्योग आदि क्योंकि इसमें निवेश पर मुनाफ़ा आने में वक़्त लगता है। लेकिन इन आधारभूत उद्योगों के बिना किसी भी देश में पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की गाड़ी छकड़ा-गाड़ी के माफ़िक़ ही चल सकती है। यह पूँजीवादी विकास के लिए अनिवार्य होता है। यह काम भारत में पूँजीवादी सरकार ने जनता की जमा पूँजी के बूते किया ताकि पूँजीपतियों को इसका ख़र्च न उठाना पड़े। पूँजीपति वर्ग ने उपभोक्ता सामग्रियों को पैदा करने पर ज़ोर दिया जिससे कि तुरन्त मुनाफ़ा कमाया जा सके। यह नेहरू की मिश्रित अर्थव्यवस्था का सारतत्व था: सारा ख़र्चा जनता का, सारा मुनाफ़ा मालिकों का!

बहरहाल, पब्लिक सेक्टर के उद्योगों व उपक्रमों में श्रम क़ानूनों को एक हद तक लागू किया गया। बड़े पूँजीपतियों के भी बड़े उद्योगों में सीमित तौर पर इन श्रम क़ानूनों को लागू किया गया। इन श्रम क़ानूनों में आठ घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार, ईएसआई, पीएफ़, बोनस, डबल रेट से ओवरटाइम का भुगतान, पेंशन आदि। लेकिन कभी भी मज़दूर आबादी की बहुसंख्या इन संगठित क्षेत्रों के कारख़ानों व कार्यस्थलों पर काम नहीं करती थी। आज संगठित व औपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों का प्रतिशत कुल मज़दूर आबादी में घटते-घटते 6-7 प्रतिशत तक आ चुका है। 93 से 94 प्रतिशत मज़दूर अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्रों के कारख़ानों, वर्कशॉपों, दुकानों, खेतों व अन्य कार्यस्थलों पर काम करते हैं। इनमें से अधिकांश को आठ घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार प्राप्त नहीं है और न ही उन्हें पीएफ़, ईएसआई, पेंशन, बोनस, स्वैच्छिक ओवरटाइम व ओवरटाइम के डबल रेट से भुगतान आदि जैसे श्रम अधिकार प्राप्त हैं, जिसे मज़दूर वर्ग ने जुझारू संघर्षों के बूते जीता था।

1980 के दशक से भारत में भी अनौपचारिकीकरण की प्रक्रिया तेज़ी से आगे बढ़ी। भारतीय अर्थवयवस्था का पहले से ही विशालकाय अनौपचारिक क्षेत्र और तेज़ी से बढ़ा। ठेका प्रथा का बोलबाला हो गया, कैज़ुअलाइज़ेशन व दिहाड़ीकरण के ज़रिए मज़दूरों की विशाल बहुसंख्या के नंगे व बर्बर शोषण का रास्ता खोल दिया गया। आज हालत यह है कि भारत के कुल मज़दूरों के 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा हिस्से को आठ घण्टे का कार्यदिवस हासिल नहीं है, जिसे मज़दूर वर्ग ने कई दशकों पहले हासिल

(पेज 10 पर जारी)

मई दिवस को मज़दूर वर्ग के जुझारू संघर्ष की नयी शुरुआत का मौक़ा बनाओ!

(पेज 9 से आगे)

किया था। दशकों के संघर्षों के बाद और दशकों पहले हासिल किये गये इन तमाम अधिकारों को आज छीना जा रहा है। क़ानून की किताबों में ये क़ानून झींगुरों की ख़ुराक बन रहे हैं। अदालतों, श्रम न्यायालयों, प्रशासकों और नेताओं-मंत्रियों को भली-भाँति पता है कि आठ घण्टे के कार्यदिवस समेत अधिकांश क़ानूनी श्रम अधिकार मज़दूरों को नहीं दिये जा रहे हैं। लेकिन पूँजीवादी राज्यसत्ता के सभी निकाय, चाहे वह सरकार हो, नौकरशाही हो या फिर न्यायपालिका, मिलीभगत करके पूँजीपति वर्ग के हितों की सेवा में सन्नद्ध हैं और इन अधिकारों के नंगे हनन पर चुप्पी साधे रहते हैं और आँखें बन्द किये रहते हैं। करें भी क्यों नहीं? जब नेताओं, मंत्रियों में ही बहुतेरे ख़ुद पूँजीपति हैं और कारख़ाने चलाते हैं और जब सभी पार्टियों का चुनावी चन्दा अरबों-खरबों में पूँजीपति वर्ग के घरानों, कम्पनियों आदि से आता है, तो ज़ाहिर है कि सरकार किसी भी पूँजीवादी पार्टी की बने, मालिकों-ठेकेदारों के और दलालों के हितों की ही सेवा की जायेगी।

दरअसल, आज पूँजीपति वर्ग को मज़दूर वर्ग के इन अधिकारों को छीनने की ख़ास तौर पर ज़रूरत है। पूरी दुनिया में पूँजीपति वर्ग आर्थिक संकट का शिकार है। यह मुनाफ़े की औसत दर के गिरने का संकट है जो कि पूँजीवादी व्यवस्था में नियमित अन्तराल पर आता रहता है और अपने आपको अतिउत्पादन और अल्पउपभोग की परिघटनाओं के रूप में प्रकट करता है। यह इसलिए होता है क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में तमाम पूँजीपति अपने मुनाफ़े को अधिकतम बनाने के लिए आपस में प्रतिस्पर्द्धा में संलग्न होते हैं और इस प्रक्रिया में वे उत्पादकता बढ़ाने के लिए उन्नत से उन्नत तकनोलॉजी लगाते हैं ताकि अपने माल को कम लागत में उत्पादित कर सकें और अपने प्रतिस्पर्द्धी को बाज़ार में पटखनी दे सकें। इस प्रक्रिया में समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ही श्रमशक्ति को ख़रीदने पर निवेश कम होता जाता है, प्रति मशीन श्रम व्यय की मात्रा कम होती जाती है और जैसे-जैसे समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में जीवित श्रम (मज़दूरों के सक्रिय श्रम) पर मृत श्रम (यानी मशीनरी, इमारतें, कच्चा माल आदि) हावी होता जाता है, वैसे-वैसे समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के स्तर पर पूँजीपतियों के मुनाफ़े की औसत दर भी गिरती जाती है। क्योंकि नया मूल्य केवल जीवित श्रम पैदा करता है। मज़दूर की मेहनत ही नये मूल्य और इस प्रकार मुनाफ़े का सृजन करती है। मशीनरी, कच्चा माल आदि क्रमिक प्रक्रिया में या एक बार में केवल अपने मूल्य को माल में स्थानान्तरित करते हैं, वे माल के मूल्य में कोई बढ़ोत्तरी नहीं करते हैं। यह मज़दूर का श्रम है, जो ख़र्च होने की प्रक्रिया में माल के रूप में ठोस रूप ग्रहण करता है और नया मूल्य पैदा करता है।

मज़दूर अपने कार्यदिवस के एक हिस्से में अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करता है, और बाक़ी हिस्से में वह पूँजीपति के लिए मुनाफ़ा पैदा करता है। अगर ऐसा न हो तो कोई पूँजीपति निवेश करेगा ही नहीं! पहले हिस्से को आवश्यक श्रमकाल कहते हैं और दूसरे को अतिरिक्त श्रमकाल। आवश्यक श्रमकाल में मज़दूरी के बराबर मूल्य का उत्पादन मज़दूर द्वारा किया जाता है और दूसरे हिस्से में पूँजीपति के लिए अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन होता है, जो कि पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े का स्रोत है। जैसे-जैसे मज़दूरों के लिए आवश्यक वस्तुओं को पैदा करने वाले उद्योगों में यानी मज़दूरी-उत्पाद पैदा करने वाले उद्योगों में उत्पादकता बढ़ती है, वैसे-वैसे मज़दूरी-उत्पाद सस्ते होते जाते हैं और श्रमशक्ति का मूल्य घटता है। यह प्रक्रिया एक दीर्घकालिक प्रक्रिया के रूप में घटित होती है। लेकिन श्रमशक्ति चाहे कितनी भी सस्ती हो जाये और मज़दूर चाहे जितने कम समय में अपने गुज़ारे लायक़, यानी अपनी श्रमशक्ति की क़ीमत के बराबर मूल्य पैदा कर ले, अन्ततः मुनाफ़े की दर गिरती ही है। अगर मज़दूर केवल हवा पर ज़िन्दा रहे और पूरे कार्यदिवस में वह पूँजीपति के लिए मुनाफ़ा पैदा करे, तो भी पूँजीपतियों के बीच माल की लागत और इस प्रकार क़ीमत को कम करने की प्रतिस्पर्द्धा के जारी रहने के कारण तकनोलॉजी, मशीनों, कच्चे माल आदि पर निवेश बढ़ता ही रहेगा और चूँकि मुनाफ़े की दर की गणना मुनाफ़े और केवल मज़दूर की श्रमशक्ति को ख़रीदने में लगी पूँजी यानी परिवर्तनशील पूँजी के अनुपात के आधार पर नहीं होती, बल्कि मुनाफ़े और कुल पूँजी निवेश के अनुपात पर होती है, इसलिए मुनाफ़े की दर अन्ततः गिरती है। मज़दूरों के शोषण की दर में बढ़ोत्तरी केवल उसे तात्कालिक व अस्थायी तौर पर रोक सकती है। संक्षेप में, मुनाफ़ा बढ़ाने की हवस को शान्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा में पूँजीपतियों द्वारा अपनाये गये तरीक़े ही, यानी श्रम की उत्पादकता को बढ़ाते जाना और मालों के दामों को कम करके प्रतिस्पर्द्धा में विजय हासिल करना, अन्ततः समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की गिरती दर के संकट को पैदा करता है। यह पूँजीपति वर्ग की इच्छा से परे है और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का एक आम नियम है। कोई एक पूँजीपति यह नहीं सोच सकता कि चूँकि उत्पादकता को बढ़ाते जाने और सस्ता बेचकर बाज़ार पर क़ब्ज़ा करने की होड़ के कारण पूँजीवाद में मुनाफ़े की औसत दर गिरने का संकट पैदा होता है, इसलिए मैं उत्पादकता बढ़ाऊँगा ही नहीं! कोई पूँजीपति अगर ऐसा करने का प्रयास करेगा तो तात्कालिक प्रतिस्पर्द्धा में वह तबाह हो जायेगा और दूसरे पूँजीपतियों द्वारा निगल लिया जायेगा। पूँजीपति वर्ग को बाज़ार कभी लम्बी दूरी का सोचने की इजाज़त नहीं देता है। पूँजी की गति पूँजीपति को नियंत्रित करती है, पूँजीपति पूँजी की गति को नियंत्रित नहीं करता।

यही वजह है कि नियमित अन्तराल पर पूँजीवाद आर्थिक संकट के भँवर में घिरता है। पूँजीवाद 1970 से ही एक दीर्घकालिक संकट से घिरा हुआ है। इसी से निपटने के लिए पूँजीपति वर्ग ने मज़दूर वर्ग से उसके श्रम अधिकारों को छीनने की प्रक्रिया 1970 के दशक से शुरू की थी। इसे ही हम नवउदारवादी नीतियों की शुरुआत के नाम से जानते हैं। 1990 का दशक आते-आते उन्नत पूँजीवादी देशों में शुरू हुई यह प्रक्रिया भारत जैसे देशों में भी खुले तौर पर और ज़ोरदार तरीक़े से शुरू हो चुकी थी। इस प्रक्रिया के तहत ही ठेकाकरण, कैज़ुअलाइज़ेशन और दिहाड़ीकरण कर मज़दूरों को स्थायी रोज़गार के अधिकार से वंचित किया गया ताकि उसकी मोलभाव की क्षमता को कम किया जा सके और उसकी औसत मज़दूरी को घटाया जा सके। यदि औसत मज़दूरी घटेगी तो मुनाफ़े की दर बढ़ेगी। इसके ज़रिए पूँजीपति वर्ग ने लगभग सभी देशों में ही 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध से लेकर 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध तक मुनाफ़े की गिरती दर को कुछ रोकने में कामयाबी हासिल की। लेकिन 2000 के दशक से शुरू हुए संकट और उसके 2007 में एक महामन्दी में तब्दील होने के साथ यह प्रक्रिया समाप्त हो गयी। आज मज़दूरों के श्रम अधिकारों पर नये सिरे से जो हमला पूरी दुनिया में किया जा रहा है, उसके पीछे 2007 से जारी दीर्घकालिक महामन्दी है। मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से पूँजीपति वर्ग बिलबिला रहा है और राहत के लिए मज़दूरों के शोषण की दर को और ज़्यादा बढ़ाने की ख़ातिर उसके नाममात्र के बचे-खुचे अधिकारों को छीनने की कोशिशों में लगा हुआ है।

यही कारण है कि 2010 के दशक की शुरुआत से ही दुनियाभर में पूँजीपति वर्ग ने अपना समर्थन उदारपन्थी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों की बजाय घोर मज़दूर विरोधी फ़ासीवादी और दक्षिणपन्थी पार्टियों और तानाशाहों को देना शुरू किया। भारत के पूँजीपति वर्ग ने भी एकमत होकर खरबों रुपये ख़र्च करके 2014 के पूँजीवादी आम चुनावों में नरेन्द्र मोदी-नीत भाजपा को सत्ता में पहुँचाया। क्योंकि मज़दूरों और आम मेहनतकश जनता के हितों पर नंगई के साथ बर्बर हमले करने का काम कांग्रेस के मुक़ाबले भाजपा ज़्यादा बेहतर तरीक़े से कर सकती है। मोदी सरकार ने पूँजीपति वर्ग के आम हितों की सेवा करते हुए यह काम किया भी है। जहाँ एक ओर नये लेबर कोड लाकर मज़दूरों से आठ घण्टे के कार्यदिवस के अधिकार को क़ानूनी तौर पर छीनने, ट्रेड यूनियन बनाने के हक़ में तमाम बाधाएँ खड़ी करने और सस्ते बाल व किशोर श्रम के शोषण का रास्ता खोलन की तैयारी की जा चुकी है, वहीं दूसरी ओर जहाँ कहीं भी मज़दूर बेहतर कार्यस्थितियों और जीवनस्थितियों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, आवाज़ उठा रहे हैं, वहाँ उन्हें क्रूरता से कुचलने का काम भी मोदी सरकार बख़ूबी कर रही है।

इसके अलावा, देश के मेहनतकश अवाम को धर्म और मन्दिर-मस्जिद के नाम पर बाँटकर असल मुद्दों से ध्यान भटकाने का काम भी भाजपा सरकार और संघ परिवार लगातार कर रहा है। कम राजनीतिक चेतना के कारण आम मेहनतकश जनता का एक हिस्सा भी अपनी हताशा में इस लहर में बह जा रहा है और उसे लग रहा है कि असली समस्या दूसरे धर्म या जाति के लोग हैं। जबकि सच्चाई यह है कि हर धर्म और जाति के मेहनतकशों की असली दुश्मन सरमायेदारों की पूरी जमात, यानी मालिक, ठेकेदार, दलाल, बिचौलिये, धनी व्यापारी आदि हैं। महँगाई, बेरोज़गारी और अनिश्चितता धर्म पूछकर वार नहीं करती। वह हर मज़दूर-मेहनतकश की कमर तोड़ रही है। लेकिन भाजपा सरकार उसे धर्म के नाम पर दंगे फैलाकर बाँटने का काम कर रही है, टुटपुँजिया आबादी की असुरक्षा का इस्तेमाल कर उसकी भीड़ को धार्मिक उन्माद में बहाकर मज़दूर वर्ग और क्रान्तिकारी ताक़तों पर हमले कर रही है ताकि देश के धन्नासेठों यानी अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला आदि की सेवा की जा सके। इन सारी साज़िशों के पीछे वास्तव में बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी और मज़दूरों के श्रम अधिकारों को छीने जाने के कुकर्म से ध्यान हटाना है।

ऐसे दौर में, मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी आन्दोलन फ़ासीवादी मोदी सरकार की इन ख़तरनाक साज़िशों का जवाब दे सकता है। वर्गसचेत मज़दूरों को इन साज़िशों को समझना चाहिए और अपने भाइयों-बहनों को इसके बारे में समझाना चाहिए। उन्हें बताना चाहिए कि किस तरह धर्म का उन्माद उनके हक़ों को छीनने और उन्हें दबाने-कुचलने के लिए ही खड़ा किया जा रहा है और इस उन्माद में बहना अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारने के समान है। हमें आज मई दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा को जानने-समझने और उसे जीवित करने की पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरत है। मई दिवस ने हमें आठ घण्टे के कार्यदिवस और एक इन्सानी जीवन का हक़ दिया था, जिसे आज पूँजीपति वर्ग और उसकी प्रतिक्रियावादी राजसत्ताएँ छीन रही हैं। आज हमें इस बात की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है कि हम नये सिरे से जागें, गोलबन्द हों और संगठित हों और अपने अधिकारों की लड़ाई के लिए यह नया महासंग्राम पूरे देश के पैमाने पर छेड़ दें।

इसके लिए हमें दरकार है कि हम संशोधनवादी पार्टियों जैसे कि माकपा, भाकपा, भाकपा (माले) आदि को मज़दूर आन्दोलन से बाहर करें क्योंकि ये हमारे संघर्ष को बेकार करने का काम करते हैं। ये नक़ली लाल झण्डे से हमें धोखा देने का काम करते हैं। वास्तव में, ये मज़दूर आन्दोलन के भीतर पूँजीपति वर्ग के भेदिये हैं जिनका मक़सद ही हमारे संघर्षों को समझौतापरस्ती, रस्मअदायगी, दलाली, कमीशनख़ोरी, अर्थवाद के दलदल में डुबा देना है। क्या हम सभी अपने अनुभवों से नहीं जानते कि देशभर में इन्होंने किस तरह हमारे आन्दोलनों को बेच खाया है, समझौतापरस्त और घुटनाटेकू नीतियों से बर्बाद किया है और मालिकों के साथ मिलीभगत कर हमारे संघर्षों को नुक़सान पहुँचाया है? यही वे ताक़तें हैं जो हमसे हमारे लड़ने की ताक़त छीन रही हैं, हमारे क्रान्तिकारी अतीत को भुला देने की साज़िशें कर रही हैं, मई दिवस और पेरिस कम्यून की इन्क़लाबी परम्पराओं पर धूल और राख की परतें चढ़ा रही हैं और मज़दूर वर्ग को एक राजनीतिक वर्ग के रूप में संगठित होने की क्षमता से वंचित कर रही हैं। आज फ़ासीवाद और मज़दूर वर्ग पर हो रहे हमलों का कारगर तरीक़े से विरोध करने की क्षमता अर्जित करने के लिए हम मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए सबसे ज़रूरी है कि संशोधनवादियों को अपने आन्दोलन में से जड़ समेत उखाड़कर फेंक दिया जाये और उन्हें कहीं भी पाँव न जमाने दिया जाये। दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों ने अपने आन्दोलन से सीटू को उखाड़ फेंका और उसका नतीजा भी सामने आया: एक ऐसा ऐतिहासिक जुझारू आन्दोलन जिसने राज्य सरकार और केन्द्र सरकार की चूलें हिला दीं। वजह यह थी यह कोई समझौतापरस्त आन्दोलन नहीं है, बल्कि जनता की शक्ति के आधार पर खड़ा एक जुझारू आन्दोलन है।

मई दिवस की परम्पराओं को जीवित करने का आज यही रास्ता हो सकता है। इसी के ज़रिए आज मज़दूर-मेहनतकश नये सिरे से क्रान्तिकारी संगठन खड़े कर सकते हैं और पूँजीवाद और फ़ासीवाद द्वारा उसके हक़ों पर लगातार किये जा रहे हमलों का कामयाबी से मुक़ाबला कर सकते हैं और उनका मुँहतोड़ जवाब दे सकते हैं।

हुन्दई मोबिस के मज़दूरों का संघर्ष भी समाप्ति की ओर

ऑटो सेक्टर के मज़दूरों के लिए कुछ ज़रूरी सबक़ और भविष्य के लिए एक प्रस्ताव

– शाम

कोविड काल के बाद शुरू हुए कई आन्दोलनों में से एक आन्दोलन धारूहेडा में शुरू हुआ। 6 से लेकर 22 साल की अवधि से काम कर रहे 105 ठेका मज़दूरों को बीती 28 फ़रवरी 2022 को हुन्दई मोबिस इण्डिया लिमिटेड कम्पनी ने बिना किसी पूर्वसूचना के काम से निकाल दिया। प्रबन्धन के साथ मज़दूरों का संघर्ष पिछले साल से ही चल रहा था। लेकिन प्रबन्धन ने 28 फ़रवरी को सभी पुराने मज़दूरों का ठेका ख़त्म होने का बहाना बनाकर छँटनी कर दी। पिछले साल से ही मज़दूर वेतन बढ़ोत्तरी की माँग उठा रहे थे। महँगाई की वजह से और कम वेतन होने के कारण मज़दूरों को हर महीने 100 घण्टे से भी ज़्यादा घण्टे ओवरटाइम करना पड़ता था। मज़दूर अपनी शिफ़्ट के साथ ओवरटाइम लगाकर किसी तरह अपना गुज़र-बसर कर रहे थे। लेकिन कम्पनी प्रबन्धन द्वारा नयी भर्ती और काम को दो शिफ़्ट में बाँटने के कारण मज़दूरों का ओवरटाइम का काम चला गया। इसपर मज़दूरों ने प्रबन्धन से वेतन बढ़ोत्तरी की माँग की लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई और उल्टा मज़दूरों की छँटनी हो गयी। मज़दूरों ने अपने परिवार समेत कम्पनी गेट के सामने इस ग़ैर-क़ानूनी छँटनी के ख़िलाफ़ न्यायपूर्ण प्रदर्शन किया तो पुलिस और कम्पनी के बाउंसरों द्वारा ज़बरन हटाने की पूरी कोशिश की गयी।

छँटनी के बाद काम पर रखे गये मज़दूरों को छुट्टी के बाद भी ज़बरन कारख़ाना परिसर में ही रखा जाता था, जिस कारण कुछ मज़दूरों ने काम छोड़ दिया। जिन मज़दूरों ने 24 घण्टे कम्पनी परिसर में रहने से मना किया कम्पनी ने उन मज़दूरों को भी काम से निकाल दिया। इन मज़दूरों को फ़िक्स टर्म एम्पलायमेण्ट – एफ़टीआई (नियत अवधि रोज़गार) के तहत रखा गया जो कि क़ानूनी तौर पर अभी तक मान्य नहीं है। लेकिन नयी श्रम संहिताओं (लेबर कोड) के लागू होने पर इसे क़ानूनी मान्यता मिल सकती है। यह विशेष ध्यान देने वाली बात है कि छँटनी किये गये मज़दूर हुन्दई और कीया कम्पनी की गाड़ियों के स्पेयर पार्टस के इन्वेण्टरी, स्टोरेज और डिस्पैच का काम करते हैं जो नियमित प्रकृति का काम है। नियमित प्रकृति का काम होने के बावजूद इसके सभी मज़दूरों को हेल्पर की श्रेणी में दिखाकर स्थायी नहीं किया जाता है। यह बात बिल्कुल साफ़ है कि यहाँ श्रम क़ानून, कम्पनियों के स्टैण्डिंग ऑर्डर तथा ठेका लाइसेंस के नियमों का एक साथ उल्लंघन हो रहा है (जो देश में विभिन्न कम्पनियों में जारी है)। ठेका प्रथा उन्मूलन एक्ट के मुताबिक़ 240 दिनों के बाद नियमित प्रकृति के काम पर मज़दूरों को पक्का करना होता है। लेकिन हुन्दई मोबिस के प्रबन्धन द्वारा सरेआम नियमों व क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं।

मज़दूरों की संघर्ष में प्रमुख माँगे निम्न थी: 1) बिना शर्त पुराने 105 कैज़ुअल मज़दूरों को काम पर वापस रखा जाये। जैसे पिछले 22 साल से काण्ट्रैक्टर के बदलने के बावजूद इन्हें रखा (रिटेन किया) जाता रहा है। 2) बढ़ती महँगाई और बुनियादी ज़रूरतों के अनुसार मज़दूरों की वेतन बढ़ोत्तरी की जाये। 3) नियमित/स्थायी प्रकृति के काम करने वाले सभी मज़दूरों को अविलम्ब स्थायी किया जाये। 4) हुन्दई कम्पनी समेत पूरे औद्योगिक क्षेत्र में श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू किया जाये।

मज़दूरों, प्रबन्धन-ठेकेदारों व श्रम विभाग के बीच कई दौर की त्रिपक्षीय वार्ता चली पर कोई हल नहीं निकला। केन्द्रीय ट्रेड यूनियन के क़ानूनी लड़ाई के ज़रिए आन्दोलन जीत लेने के भ्रम में मज़दूरों ने संघर्ष को सेक्टर के मज़दूरों के बीच ले जाने का काम बेहद सांकेतिक तौर पर ही किया। इस भ्रम को मज़दूरों की स्वत:स्फूर्तता की पूँछ पकड़कर लटके "अतियथार्थवादी" अर्थवादियों ने भी मज़बूत किया। श्रम विभाग के माँग करने पर भी प्रबन्धन ने काण्ट्रैक्ट अग्रीमेण्ट, सर्विस रिकॉर्ड आदि ज़रूरी काग़ज़ात पेश नहीं किये और जो पेश भी किये गये वे सब फ़र्ज़ी थे। अन्त में 94 मज़दूरों को हिसाब दे दिया गया और 11 मज़दूरों ने कम्पनी पर केस किया है। यह आन्दोलन भी अन्तत: केन्द्रीय ट्रेड यूनियन और मज़दूरों की स्वत:स्फूर्तता की पूँछ पकड़कर लटके "अतियथार्थवादी" अर्थवादियों के अर्थवाद में डूब गया।

इस आन्दोलन से एक बार फिर यह स्पष्ट हुआ है कि एक फ़ैक्टरी के मज़दूर अपना संघर्ष अपने दम पर अकेले जीत लें, यह काफ़ी मुश्किल होता जा रहा है। न सिर्फ़ हुन्दई मोबिस के संघर्ष को बल्कि जेएनएस और अन्य कम्पनियों के संघर्ष सेक्टरगत और इलाक़ाई आन्दोलनों में विकसित न होने के कारण जीत तक नहीं पहुँचे हैं। अन्त में संघर्ष को मुख्यत: क़ानूनी कार्रवाई तक ही सीमित कर दिया जाता है। निश्चित तौर पर, एक कारख़ाने के भीतर उठने वाले मसलों पर भी संघर्ष होना ही चाहिए और होता ही है। लेकिन जब तक ऑटो सेक्टर के मज़दूरों की एक पेशागत यूनियन नहीं बनती जो कि नक़ली वामपन्थी पार्टियों और उनकी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से स्वतंत्र हो और समझौतापरस्ती की बजाय संघर्ष के रास्ते जीत हासिल करने का लक्ष्य रखती हो। अलग-अलग कारख़ानों के संघर्षों को भी केवल एक ऐसी स्वतंत्र क्रान्तिकारी पेशागत यूनियन के बूते ही जीता जा सकता है जो कि समूचे ऑटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूरों को अपने भीतर समेटती हो और इस या उस चुनावबाज़ पूँजीवादी या संशोधनवादी पार्टी का जेबी माल न हो।

महज़ हुन्दई मोबिस कम्पनी में ही नहीं बल्कि पूरे धारूहेड़ा और हरियाणा समेत देशभर में इसी तरह से श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं। श्रम विभाग का काम हमें क़ानूनी प्रक्रिया में लटकाने, भरमाने और थकाने का होता है जिसमें वह कामयाब हुआ है। आज ऑटोसेक्टर में पहले से स्थापित केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों और उनके वकीलों से सावधान होने की ज़रूरत है। चाहे हाल ही में लड़ा गया जेएनएस का मामला हो या पहले के होण्डा, ओमेक्स, हीरो के जुझारू आन्दोलनों का। इन्होंने इन आन्दोलनों को बर्बाद करने का ही काम किया है। 1990 से इनका काम एक-दो दिवसीय हड़तालों के ज़रिए मज़दूरों के ग़ुस्से की धधकती आग पर पानी के छींटे डालने का है। ज़रूरत पड़ने पर ये फ़ेडरेशनें अपने से जुड़ी यूनियनों को (जो कि महज़ स्थायी मज़दूरों की हैं न कि ठेका मज़दूरों की) कहीं किसी वास्तविक अनिश्चितकालीन हड़ताल में शामिल नहीं करवाते हैं। जेएनएस की 29 मार्च की घटना इसका उदाहरण है।

इनके चरित्र पर हम लोग पहले भी लिख चुके हैं। 'ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री काण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन' द्वारा प्रकाशित 'आगे का रास्ता क्या हो?' पर्चे में भी इनके चरित्र की आलोचना पेश की गयी थी। पर्चे में लिखा था कि "चुनावबाज़ पार्टियों के केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ कथनी में तो मज़दूरों की रहनुमाई का दावा करते हैं लेकिन करनी में इनका काम मालिकों, प्रबन्धन और सरकार की ओर से दलाली करना और मज़दूर आन्दोलन को ऐसे समझौतों तक सीमित रखना है जिनमें हमेशा प्रबन्धन का पक्ष मज़दूरों पर हावी रहता है। सोचने की बात है कि माकपा और भाकपा जैसे संसदीय वामपन्थियों समेत सभी चुनावी पार्टियाँ संसद और विधानसभाओं में हमेशा मज़दूर-विरोधी नीतियाँ बनाती हैं तो फिर इनसे जुड़ी ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के हक़ों के लिए कैसे लड़ सकती हैं? पश्चिम बंगाल में टाटा का कारख़ाना लगाने के लिए ग़रीब मेहनतकशों का क़त्लेआम हुआ तो माकपा व भाकपा से जुड़ी ट्रेड यूनियनों ने इसके ख़िलाफ़ कोई आवाज़ क्यों नहीं उठायी। जब कांग्रेस और भाजपा की सरकारें मज़दूरों के हक़ों को छीनती हैं तो भारतीय मज़दूर संघ, इंटक आदि जैसी यूनियनें चुप्पी क्यों साधे रहती हैं। ज़्यादा से ज़्यादा चुनावी पार्टियों से जुड़ी ये ट्रेड यूनियनें कुछ रस्मी प्रदर्शन या विरोध की नौटंकी करती हैं। ऐसे में, इन चुनावी पार्टियों की ट्रेड यूनियनों से मज़दूरों को कोई उम्मीद नहीं रखनी चाहिए।" तथा आगे "चुनावी पार्टियों से जुड़ी इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की समझौतापरस्ती और ग़द्दारी और ऐसे अराजकतावादी संगठनों के अवसरवाद के कारण ही आज इस पूरी ऑटोमोबाइल पट्टी के मज़दूर आन्दोलन में एक प्रधानी की ग़ैर-जनवादी प्रवृत्ति है जिसमें नेतृत्व में कुछ तथाकथित प्रधानों के हाथों में सबकुछ दिया जाता है और आम मज़दूर आबादी से राय-मशविरे और उनकी इजाज़त से आन्दोलन के निर्णय नहीं लिये जाते। मज़दूरों के बीच सामूहिक रूप से फ़ैसला लेने की संस्कृति को स्थापित करने की बजाय ये तथाकथित प्रधान बन्द कमरों में निर्णय लेते हैं। ट्रेड यूनियन के भीतर जनवाद और वित्तीय पारदर्शिता का अभाव अन्त में आन्दोलन को पतन या बिखराव के रास्ते पर ले जाता है।"

इसके साथ ही इस पर्चे में आन्दोलन में मौजूद अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी धारा की भी आलोचना पेश की गयी थी जो आज भी मौजूँ है:

"चुनावी पार्टियों से जुड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की समझौतापरस्ती और ग़द्दारी के अतिरिक्त मज़दूर आन्दोलन में कुछ नये क़िस्म के अवसरवादी, सुधारवादी संगठनों की घुसपैठ शुरू हुई है जो क़ानूनी सलाहकार और सहयोगी की भूमिका में रहते हैं और "मज़दूर पहलक़दमी" के नाम पर मज़दूर आन्दोलन में हर प्रकार की अराजकतावादी, अर्थवादी (केवल वेतन-भत्तों की माँगों तक सीमित रहने की प्रवृत्ति), अवसरवादी, लोकरंजकतावादी, संघाधिपत्य-वादी (मज़दूर आन्दोलन में सही राजनीति की ज़रूरत को न समझते हुए उसे केवल ट्रेडयूनियनवाद तक सीमित कर देने की प्रवृत्ति) और विजातीय व नुक़सानदेह प्रवृत्तियों को बढ़ावा देते हैं। ये अपने आपको मज़दूर आन्दोलन में एक क़ानूनी सलाह सहयोग केन्द्र के रूप में पेश करते हैं और मज़दूर आन्दोलन का विराजनीतिकरण करते हुए आन्दोलन में स्वत:स्फूर्त रूप से पैदा होने वाले हर सही-ग़लत रुझान को बढ़ावा देते हैं। सही राजनीतिक विचार, नेतृत्व और रणनीति को सचेतन तौर पर विकसित करने की बजाय अपने आप पैदा होने वाली हर विजातीय प्रवृत्ति को ये बढ़ावा देते हैं।"

ऑटो सेक्टर के मज़दूरों के संघर्ष का आगे का रास्ता क्या है?

इस साल भी गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल के मज़दूरों के अलग-अलग कारख़ानों में जुझारू संघर्ष उठते रहे लेकिन अपने मुकाम पर नहीं पहुँचे। कोरोना काल में गुड़गाँव-मानेसर-धारुहेड़ा-बावल से लेकर भिवाड़ी-खुशखेड़ा-नीमराना-बहरोड़ तक कोरोना महामारी के कारण मालिकों ने उत्पादन रोक दिया। इस बीच कम्पनियों ने आपदा में अवसर ढूँढ़ते हुए स्थायी मज़दूरों और पुराने कैज़ुअल मज़दूरों की छँटनी कर दी। बहुतेरे मज़दूरों को हिसाब या तो मिला नहीं या फिर कम मिला या देर से मिला। सरकार ने कोरोना की बन्दिशों के नाम पर मज़दूरों के हड़ताल, धरना, प्रदर्शन तक पर रोक लगा दी थी। ऐसे मे मज़दूरों के साथ हो रहे अन्याय को सुनने वाला कोई नहीं था और न ही कोई आवाज़ उठाने दी गयी।

बावल में ग्लास फ़ैक्टरी में मज़दूरों ने शर्ट उतारकर प्रदर्शन करने शुरू कर दिये थे। लेकिन जल्दी ही इस पर रोक लगा दी गयी। केनफ़ाई कम्पनी की स्थायी महिला मज़दूर भी गेट पर बैठी लेकिन यह संघर्ष भी आगे नहीं बढ़ पाया। धारूहेड़ा में रिको के मज़दूरों को ज़बरन वी.आर.एस. – सेवानिवृति देने के विरुद्ध आन्दोलन निरन्तर चलने के बावजूद गतिरोध का शिकार है और अब केवल सांकेतिक ही रह गया है। हेमा के मज़दूरों को निकालकर बाहर का रास्ता दिखा दिया और तालाबन्दी की घोषणा कर दी गयी, ऑटोफ़िट में स्थायी और ठेका मज़दूरों की छँटनी हुई। हाल ही में मानेसर में मारूति के कई ठेका मज़दूरों को निकाल दिया गया। जेएनएस की महिला मज़दूरों का बहादुराना संघर्ष भी अन्तत: समझौते में समाप्त हुआ।

अगर कुल मिलाकर कहा जाये तो यह कहना सही होगा कि प्रबन्धन के मंसूबों के शिकार ग़ैर-यूनियनबद्ध या यूनियनबद्ध मज़दूरों के स्वत:स्फूर्त संघर्षों की आहटें कोरोना के बाद ग़ुस्से के रूप में सामने आना शुरू हो चुकी हैं। यह सुगबुगाहट आने वाले दिनों में खड़े होने वाले आन्दोलन की हैं। आज आन्दोलन में ग़लत प्रवृतियों के हावी होने के चलते मौजूदा संघर्ष जीते नहीं जा सके हैं। बढ़ती महँगाई, वेतन कटौती, छँटनी, उत्पादन के टारगेट का दवाब, बढ़ती औद्योगिक दुर्घटनाओं के कारण मज़दूरों का ग़ुस्सा आख़िर टकराहटों के बाद फूटना शुरू हो रहा है। ऐसे में हमें आज अपनी सेक्टरगत और इलाक़ाई क्रान्तिकारी यूनियन खड़ी करनी होगी जो सभी चुनावबाज़ पूँजीवादी पार्टियों और उनकी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से स्वतंत्र हो। संशोधनवादी पार्टियों समेत सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों का काम मज़दूरों के आन्दोलन को उन सीमाओं में क़ैद रखना है, जिनसे मालिकान और प्रबन्धन को कोई परेशानी न पेश आये। इनका काम मज़दूरों के आन्दोलन को जुझारू तरीक़े से आगे बढ़ाकर जीत तक पहुँचाना नहीं है, बल्कि उन्हें काट-छाँटकर गमले का पौधा बना देना है,

(पेज 12 पर जारी)

ऑटो सेक्टर के मज़दूरों के लिए कुछ ज़रूरी सबक़ और भविष्य के लिए एक प्रस्ताव

(पेज 11 से आगे)

जो कि मालिकों के बाग़ की शोभा बढ़ाये। मज़दूर आन्दोलन तभी जीत सकता है, जब वह मालिकों, प्रबन्धन और उनकी सरकारों के प्राधिकार और चौधराहट की परवाह किये बग़ैर अपने हक़ों और माँगों के लिए जुझारू तरीक़े से लड़े। केवल ऐसे आन्दोलनों से ही कम्पनियाँ और उनके प्रबन्धन और साथ ही सरकारें घबराती हैं।

'ऑटो मोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन' द्वारा प्रकाशित पर्चे के ज़रिए हम ऑटोसेक्टर के मज़दूरों के समक्ष आगे का रास्ता प्रस्तावित कर रहे हैं:

"'ऑटो मोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन' का मानना है कि आज पूरे ऑटो सेक्टर के पूँजीपतियों की एक साझा नीति है कि मज़दूरों को 'हायर एण्ड फ़ायर' नीति पर रखा जाये, यानी जब चाहे काम पर रखो, और जब चाहे लात मारकर फ़ैक्टरी से बाहर कर दो; उन्हें यूनियन बनाने के अधिकार से वंचित कर दिया जाये और उन्हें तानाशाहाना प्रबन्धन के तहत काम करने के लिए बाध्य किया जाये। वैसे भी पूरे ऑटो मज़दूरों की 80 फ़ीसदी आबादी कैज़ुअल या ठेका मज़दूरों की है जिनके सिर पर हमेशा छँटनी की तलवार लटकती रहती है। और स्थायी मज़दूर का संख्या बल इतना कम है कि वे चाह कर भी अपनी ताक़त के बूते प्रबन्धन को झुका नहीं सकते हैं। इसलिए हमें अपनी फ़ैक्टरी के भीतर स्थायी, कैज़ुअल और ठेका मज़दूरों की एकजुटता की ताक़त तो क़ायम करनी ही है लेकिन साथ ही पूरे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल के सभी ऑटो मज़दूरों की सेक्टरगत यूनियन भी खड़ी करनी होगी। यानी एक ऑटोमोबाइल मज़दूर यूनियन का निर्माण करना होगा। वास्तव में, तमाम कारख़ानों के भीतर स्थायी, ठेका और कैज़ुअल मज़दूरों के बीच भी एकजुटता तभी क़ायम हो सकती है जब एक सेक्टरगत ऑटोमोबाइल मज़दूर यूनियन खड़ी की जाये। आज ऐसी यूनियन के बग़ैर अलग-अलग कारख़ानों की चौहद्दियों में केन्द्रित मज़दूर आन्दोलन का जीता जा पाना मुश्किल होता जा रहा है। जैसा कि हमने ऊपर देखा, आज पूँजी के पक्ष में सरकारें और उनकी पुलिस, नौकरशाही और अदालतें खुलकर मज़दूरों के आन्दोलनों का दमन कर रही हैं। होण्डा से लेकर मारुति तक के संघर्ष ने दिखलाया है कि एक कारख़ाने की चौहद्दी के भीतर क़ैद रहकर ऑटो मज़दूरों का आन्दोलन ज़्यादा आगे नहीं जा सकता है। दूसरी बात यह है कि ऐसी सेक्टरगत यूनियन किसी भी चुनावी पार्टी या चुनावी पार्टियों से सम्बद्ध केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से स्वतंत्र होनी चाहिए क्योंकि ये चुनावी पार्टियाँ और उनकी ट्रेड यूनियनें ही हैं जिन्होंने मज़दूर आबादी को बाँटा हुआ है, जिन्होंने मज़दूर आन्दोलन को व्यापक सेक्टरगत और इलाक़ाई एकजुटता की ओर नहीं जाने दिया है। इन चुनावी पार्टियों की केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के झाँसे में रहकर मज़दूर आन्दोलन एक गोल चक्कर में घूमता रह जायेगा। इसलिए आज एक ऐसी पेशागत ऑटोमोबाइल मज़दूर यूनियन की ज़रूरत है जो कि चुनावी पार्टियों और उनकी पिछलग्गू यूनियनों से स्वतंत्र हो। निश्चित तौर पर इसका यह अर्थ नहीं है कि इस ऑटोमोबाइल मज़दूर यूनियन की कोई राजनीति नहीं होगी; इसका सिर्फ़ यह अर्थ है कि इस यूनियन की राजनीति चुनावी पार्टियों और उनकी पिछलग्गू यूनियनों की पूँजीवादी राजनीति से स्वतंत्र होगी और मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी राजनीति पर आधारित होगी। एक ऐसी ऑटोमोबाइल मज़दूर यूनियन हमारे विचार में सम्भव है और न सिर्फ़ सम्भव है, बल्कि अनिवार्य है।"

मोदी सरकार के निकम्मेपन और लापरवाही ने कोरोना से भारत में 47 लाख लोगों की जान ली

(पेज 1 से आगे)

से 47.4 लाख मौतें यानी कुल मौतों का लगभग एक-तिहाई अकेले भारत में हुआ है। दूसरे शब्दों में, कोविड महामारी के कुप्रबन्धन में तो मोदी सरकार ने भारत को 'विश्व गुरू' बना ही दिया, रोज़गार के मामले में भले न बना पायी हो! विश्व स्वास्थ्य संगठन की रपट में बताया गया कि भारत में 8.3 लाख कोविड मौतें तो अकेले 2020 में हुई थीं जबकि कुल मिलाकर क़रीब 47.4 लाख मौतें हुईं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रपट आने के दो दिन पहले ही भारत सरकार ने 2020 के लिए जन्म और मृत्यु के पंजीकरण का आँकड़ा मुहैया कराया जिसमें पिछले वर्ष से 4.75 लाख अधिक मौतें दर्ज की गयी थीं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की पद्धति यह है कि वह अतिरिक्त मौतों को गिनता है, यानी कि औसत मृत्यु दर के ऊपर होने वाली अतिरिक्त मौतों को। औसत मृत्यु दर आम तौर पर अन्य सभी नियमित कारकों से होने वाली मौतों की गणना करती है। किसी महामारी के दौरान महामारी के कारण होने वाली मौतों की संख्या का सही आकलन न होने पर अक्सर ही अतिरिक्त मौतों की संख्या का आकलन किया जाता है जो कि औसत मृत्यु दर के ऊपर होती हैं। निश्चित तौर पर, यह हमें एकदम सटीक संख्या नहीं दे सकता है। लेकिन फिर भी यह एक ठीक-ठाक अनुमान दे देता है। कोविड महामारी के शुरू होने के बाद से यदि अतिरिक्त मौतों की संख्या 47.4 लाख बैठती है, तो यह कहा जा सकता है कि इसका मुख्य कारण कोविड महामारी ही थी।

मई-जून 2021 में गंगा किनारे रेत में दफ़नाये गये कोरोना मृतकों के शव

यह भी याद रखना चाहिए कि इस पूरे दौर में ट्रैफ़िक दुर्घटनाओं व अन्य कई बीमारियों से मौतों की संख्या में लॉकडाउन के कारण कमी भी आयी थी। इसके बावजूद यदि अतिरिक्त मौतों की संख्या इस क़दर ज़्यादा है, तो यह माना जा सकता है कि वास्तव में सरकारी उपेक्षा और लापरवाही के चलते लाखों की संख्या में आम लोगों ने कोविड के दौरान अपनी जानें गँवायी हैं।

मृत्यु का जो ताण्डव कोविड के दौरान हुआ, उसे तो आम मेहनतकश जनता ने अपनी आँखों से भी देखा। कितने ही लोग बिना बीमारी की पहचान के ही गाँवों और क़स्बों में मारे गये, इसका आकलन तो अभी होना बाक़ी है। शहरों तक में अस्पतालों में जगह न मिल पाने के कारण हज़ारों-लाखों लोग घर में ही बीमार रहे और फिर मर गये। इसका आकलन भी नहीं हो सका है। ऐसे में, अतिरिक्त मौतों का आकलन महामारी में मारे जाने वाले लोगों की संख्या का एक मोटा-मोटी सही आकलन मुहैया कराता है। ऐसा वैज्ञानिक संस्थाओं ने महज़ कोविड महामारी के दौरान ही नहीं किया है, बल्कि कई देशों में तमाम महामारियों के दौरान असली मृत्यु दर के अनुमान के लिए इसी पद्धति का इस्तेमाल किया जाता है।

मोदी सरकार अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन की पद्धति पर सवाल उठा रही है, लेकिन जो सच है, उसे जनता ने भी पिछले लगभग तीन वर्षों में देखा है। यदि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने ये आँकड़े जारी नहीं भी किये होते तो जनता जानती है कि किसी भी पैमाने से देखा जाये तो यह साफ़ हो जाता है कि मोदी सरकार और सभी राज्य सरकारों ने कोविड के कारण होने वाली मौतों की संख्या को बेहद कम करके दिखलाया है।

यही कारण है कि सभी राज्यों की सरकारें यहाँ तक कि उन राज्यों की भी जहाँ भाजपा शासन में नहीं है, मोदी सरकार की हाँ में हाँ मिला रही हैं और विश्व स्वास्थ्य संगठन को यह आँकड़े जारी करने के लिए कोस रही हैं। जहाँ जनता के साथ हुई नाइन्साफ़ी को छिपाने का सवाल है, वहाँ सभी पूँजीवादी पार्टियाँ एकजुट हो गयी हैं!

विश्व स्वास्थ्य संगठन को ये आँकड़े पेश करने की क्या आवश्यकता है? आवश्यकता इसलिए है क्योंकि हुक्मरानों को अपनी हुकूमत को चलाने के लिए भी सही सूचनाओं व आँकड़ों की आवश्यकता होती है। यह दीगर बात है कि आँकड़ों पर ख़ुद ही तमाम पूँजीवादी दल और पूँजीवादी सरकारें दुनियाभर की सियासत करती हैं। लेकिन पूँजीपति वर्ग और उसके नुमाइन्दों और विशेष तौर पर उसकी राज्यसत्ताओं को भी हर मुद्दे पर सही सूचनाओं और आँकड़ों की आवश्यकता होती है। जो शासक वर्ग सूचनाओं के प्रति लापरवाह नज़रिया रखता है, वह कभी जनता पर अपने शासन को दीर्घजीवी नहीं बना सकता है। इसलिए जहाँ जनता से ठोस आँकड़ों को कई बार शासक वर्ग छिपाता है, वहीं उसके आपसी अन्तरविरोधों के चलते कई बार ये सूचनाएँ और आँकड़े जनता के सामने भी आ जाते हैं। कुछ आँकड़े तो पूँजीवादी सरकारें जुटाती हैं, लेकिन उन्हें कभी जनता से साझा नहीं किया जाता है। इतना साफ़ है कि दुनिया की सभी पूँजीवादी सरकारों ने लेकिन विशेष तौर पर दक्षिणपन्थी व फ़ासीवादी सरकारों ने, जैसे कि मोदी सरकार, कोविड महामारी का सबसे जनविरोधी और जनद्रोही कुप्रबन्धन किया जिसकी क़ीमत लाखों आम लोगों को अपनी जानें चुका कर देनी पड़ी। इस बात को हम मेहनतकशों को कभी भूलना नहीं चाहिए कि कोविड महामारी के समय हमारे सामने मौजूदा फ़ासीवादी व्यवस्था ने दो विकल्प रख दिये थे: कोविड से मरो, या भूख से मरो। न तो हमारे रोज़गार, जीविकोपार्जन, भोजन आदि की समुचित व्यवस्था की गयी थी और न ही हमारे चिकित्सा और इलाज की। इसका क्या नतीजा हुआ, आज यह सामने आ चुका है।

सारी दुनिया के मज़दूरों के नेता और शिक्षक कार्ल मार्क्स के जन्मदिवस (5 मई) पर

मज़दूरी की दर अपेक्षाकृत ऊँची होने के बावजूद श्रम की उत्पादन-शक्ति के बढ़ने से पूँजी का संचय तेज़ हो जाता है। इससे एडम स्मिथ की तरह, जिसके ज़माने में आधुनिक उद्योग अपने बाल्य-काल में ही था, कोई यह नतीजा निकाल सकता है कि पूँजी का संचय तेज़ होने से मज़दूर का पलड़ा भारी हो जायेगा, क्योंकि उसके श्रम की माँग बढ़ेगी। इसी दृष्टिकोण से सोचते हुए बहुत-से तत्कालीन लेखकों ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि यद्यपि पिछले बीस वर्षों में अंग्रेज़ पूँजी इंग्लैण्ड की आबादी के मुक़ाबले में बहुत तेज़ी से बढ़ी है, पर मज़दूरी बहुत नहीं बढ़ी।

बात असल में यह है कि संचय की प्रगति के साथ-साथ पूँजी की बनावट में अधिकाधिक परिवर्तन होता जाता है। कुल पूँजी का वह भाग, जो अचल पूँजी कहलाता है, यानी जिसमें मशीन, कच्चा माल, और हर प्रकार के उत्पादन के साधन आते हैं, पूँजी के दूसरे भाग की तुलना में, जो मज़दूरी की शक्ल में अथवा श्रम ख़रीदने के लिए ख़र्च किया जाता है, अधिक तेज़ी से बढ़ता है। मिस्टर बार्टन, रिकार्डो, सिसमोन्दी, प्रोफ़ेसर रिचर्ड जोन्स, प्रोफ़ेसर रैमज़े, चेरबुलिएज़ आदि, ने इस नियम को कमोबेश सही रूप में पेश किया है।

यदि पूँजी के इन दो तत्त्वों का अनुपात शुरू में 1:1 था तो उद्योग की प्रगति के साथ वह 5:1 हो जायेगा और इसी तरह बदलता जायेगा। यदि 600 की कुल पूँजी में से 300 औज़ारों, कच्चे माल, आदि, पर ख़र्च किये जाते हैं और 300 मज़दूरी पर, तो कुल पूँजी के दोगुने होते ही 300 के बजाय 600 मज़दूरों की माँग पैदा हो जायेगी। पर यदि 600 की पूँजी में से 500 मशीनों, कच्चे माल आदि पर और सिर्फ़ 100 मज़दूरी पर ख़र्च होते हैं, तो 300 के बजाय 600 मज़दूरों की माँग पैदा करने के लिए इसी पूँजी को 600 से 3,600 हो जाना पड़ेगा। इसलिए, उद्योग की प्रगति में श्रम की माँग पूँजी के संचय के साथ-साथ नहीं बढ़ती। वह बढ़ती तो है; पर जितनी ही तेज़ी से पूँजी बढ़ती है, श्रम की माँग उतनी ही धीरे-धीरे बढ़ती है।

इन चन्द इशारों से यह बात साफ़ हो जानी चाहिए कि आधुनिक उद्योग-धन्धों का विकास ख़ुद मज़दूर के ख़िलाफ़ पूँजीपति का पलड़ा अधिकाधिक भारी करता जाता है। और इसलिए पूँजीवादी उत्पादन की आम प्रवृति मज़दूरी का औसत स्तर ऊपर उठाने की नहीं, बल्कि उसे नीचे गिराने, या श्रम के मूल्य को कमोबेश उसकी अल्पतम सीमा पर पहुँचा देने की है। जब इस व्यवस्था में चीज़ों की प्रवृत्ति ही ऐसी है, तो क्या इसका यह मतलब होता है कि मज़दूर वर्ग को पूँजी के हमलों का मुक़ाबला करना बन्द कर देना चाहिए और अस्थायी

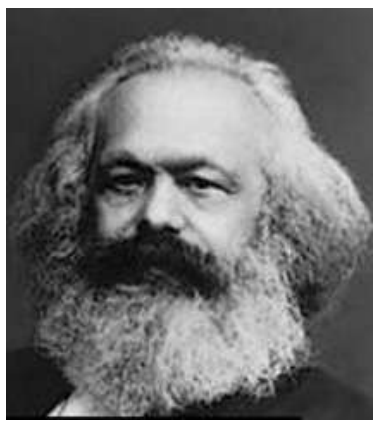

रूप से अपनी हालत सुधारने के उसे कभी-कभी जो अवसर मिलते हैं, उनका सर्वोतम उपयोग करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए? यदि मज़दूर ऐसा करेंगे तो वे सब के सब उन खाना-ख़राब बदनसीब इन्सानों में जा मिलेंगे जिनकी मुक्ति की कोई आशा नहीं रह गयी है। मैं समझता हूँ, मैंने यह सिद्ध कर दिया है कि जीवन-स्तर के लिए मज़दूरों के संघर्ष ऐसी घटनाएँ हैं जिन्हें मज़दूरी की पूरी व्यवस्था से अलग नहीं किया जा सकता, कि तनख़्वाह बढ़ाने की मज़दूरों की सौ में से निन्यानवे कोशिशें केवल अपने श्रम के मूल्य को ज्यों का त्यों क़ायम रखने की कोशिशें होती हैं, और यह कि मज़दूरों को चूँकि अपने-आपको माल की तरह बेचना पड़ता है, इसलिए लाज़िमी हो जाता है कि वे पूँजीपति से अपने दाम के बारे में मोल-भाव करें। यदि मज़दूर पूँजी के साथ अपने रोज़मर्रा के संघर्ष में झुक जायेंगे तो निश्चय है कि वे कोई बड़ा आन्दोलन छेड़ने में भी असमर्थ रहेंगे।

इसके साथ-साथ, और मज़दूरी की व्यवस्था के साथ चलने वाली आम ग़ुलामी से बिल्कुल अलग, मज़दूर वर्ग को यह नहीं समझना चाहिए कि इन रोज़मर्रा के संघर्षों का अन्त में कोई बहुत बड़ा परिणाम निकलेगा। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे किन्हीं प्रभावों से लड़ रहे हैं, लेकिन इन प्रभावों के कारणों से नहीं लड़ रहे हैं; वे नीचे की ओर धकेलने वाली गति को धीमा कर रहे हैं, पर उसकी दिशा नहीं बदल रहे हैं; वे मर्ज़ के असर को कम करने के लिए दवा दे रहे हैं, पर मर्ज़ को दूर नहीं कर पा रहे हैं।

ये छापेमार लड़ाइयाँ ज़रूरी हैं, और उनसे अलग नहीं रहा जा सकता, और पूँजी के कभी न रुकने वाले हमलों या बाज़ार के अनवरत परिवर्तनों के कारण वे लगातार फूटती रहती हैं। पर, मज़दूरों को सिर्फ़ उन्हीं में डूबकर नहीं रह जाना चाहिए। उन्हें यह समझना चाहिए कि मौजूदा व्यवस्था उन पर तरह-तरह की मुसीबतों के पहाड़ तो तोड़ती है, पर साथ ही, वह उन भौतिक परिस्थितियों और सामाजिक रूपों को भी तैयार करती है जो समाज का आर्थिक पुनर्निर्माण करने के लिए आवश्यक हैं। इसलिए "पूरे दिन के काम के लिए पूरे दिन की मज़दूरी मिले!" वाले रूढ़िवादी नारे की जगह उन्हें अपने झण्डे पर यह क्रान्तिकारी नारा लिखना चाहिए: **"मज़दूरी की व्यवस्था का नाश हो!"**

इस बहुत लम्बी, और मुझे भय है, थकाने वाली चर्चा के बाद, जो विषय के साथ न्याय करने के लिए आवश्यक हो गयी थी, मैं नीचे लिखे प्रस्ताव पेश करके अपनी बात ख़त्म करता हूँ:

एक: मज़दूरी की दर में आम बढ़ती से मुनाफ़े की आम दर तो गिरेगी, पर मोटे तौर पर, उसका मालों के दामों पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

दो: पूँजीवादी उत्पादन की आम प्रवृत्ति मज़दूरी का स्तर ऊपर उठाने की नहीं, बल्कि नीचे गिराने की है।

तीन: ट्रेड यूनियनें पूँजी के हमलों के प्रतिरोध के केन्द्रों के रूप में अच्छा काम करती हैं। आंशिक रूप से, वे अपनी शक्ति का अविवेकपूर्ण उपयोग करने के कारण असफल होती हैं। आम तौर पर, उनकी असफलता का कारण यह है कि वे अपने को वर्तमान व्यवस्था के प्रभावों के ख़िलाफ़ एक छापामार युद्ध चलाने तक सीमित रखती हैं और उसके साथ-साथ इस व्यवस्था को ही बदलने की कोशिश नहीं करतीं, अपनी संगठित शक्तियों को मज़दूर वर्ग की अन्तिम मुक्ति के लिए, अर्थात मज़दूरी की व्यवस्था के अन्तिम ख़ात्मे के लिए, इस्तेमाल नहीं करतीं।

('मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा' का एक अंश)

मज़दूरों के बीच सट्टेबाज़ी ऐप्स का बढ़ता ख़तरनाक चलन

– विवेक

पूँजीवादी कुसंस्कृति किस प्रकार से मज़दूरों के बीच अपनी पैठ बनाती है, इसका हालिया नमूना तमाम तरह-तरह के फ़ैण्टेसी टीम व सट्टेबाज़ी ऐप्स हैं। ये सारे ऐप आपको रातों-रात करोड़पति बनाने का वायदा करते हैं। इनके अनुसार, महज़ कुछ पैसा लगायें और अगर "क़िस्मत की देवी" मेहरबान हुई तो फिर आप मालामाल हो जायेंगे। शहरों में काम करने वाले मज़दूरों की आबादी के बीच इन सट्टेबाज़ी ऐप्स का चलन पिछले 3 से 4 वर्षों में काफ़ी बढ़ गया है। पूँजीवाद की शैशावस्था से यानी 19वीं शताब्दी के मध्य से पूँजीपतियों द्वारा जुए और सट्टेबाज़ी को बढ़ावा दिया जा रहा है। विशेषकर इंग्लैण्ड में उस वक़्त खेले जाने वाले खेल जैसे मुक्केबाज़ी, क्रिकेट, रग्बी, घुड़दौड़ आदि में किसी के जीतने और हारने पर सट्टे लगते थे। जुआघरों में इन पर दाँव लगाने वाले मुख्यत: शहरी मज़दूर होते थे, उस वक़्त भी जुआघर के मालिक ऐसे रातों-रात अमीर बना देने का प्रलोभन देते थे। आज भी नये-नये तरीक़ों के माध्यम से यह परिपाटी जारी है।

ड्रीम इलेवन, माय इलेवन सर्किल, एमपीएल जैसे एक दर्जन से ज़्यादा ऐप इस वक़्त मौजूद हैं, जो क्रिकेट मैचों व अन्य खेलों पर फ़ैण्टेसी टीम बनाकर लोगों को पैसा जीतने का प्रलोभन देते हैं। वैसे किसी को भी यह लग सकता है कि भारत में सट्टेबाज़ी ग़ैर-क़ानूनी है और इसके ख़िलाफ़ क़ानून भी है। तो आख़िर इन ऐप्स को इतनी छूट क्यों है?

तो मसला यह है कि इन ऐप्स में पैसा लगाने और उसके एवज़ में इनाम पाने का फ़ॉर्मेट ऐसा तय किया गया है कि यह विशुद्ध सट्टेबाज़ी के रूप में गिना नहीं जा सकता है। वर्ष 2019 में ड्रीम इलेवन पर दायर एक मुक़दमे की सुनवाई करते हुए बॉम्बे हाई कोर्ट ने कहा था कि ऐसे ऐप किसी भी रूप में सट्टेबाज़ी को बढ़ावा नहीं दे रहे हैं। इसके पीछे तर्क था कि वास्तविकता में खेल के दौरान किसी टीम के हारने या जीतने पर ऐप के माध्यम से पैसा लगाया नहीं जा रहा है। दरअसल आप यहाँ किसी एक टीम के हारने या जीतने नहीं बल्कि चुनिन्दा खिलाड़ियों की खेल के दौरान परफ़ॉर्मेंस पर पैसे लगाते हैं। रूप के तौर पर हालाँकि यह विशुद्ध सट्टेबाज़ी से अलग है लेकिन अन्तर्वस्तु के तौर पर यह सट्टेबाज़ी ही है। लोगों के विरोध के कारण हालाँकि असम, सिक्किम, नगालैण्ड, ओडिशा, तेलंगाना और आन्ध्र प्रदेश में फ़ैण्टेसी ऐप्स पर प्रतिबन्ध लगा है, पर ज़्यादातर राज्यों में यह बिना रोकटोक जारी है।

इस क़िस्म की सट्टेबाज़ी फ़ैण्टेसी स्पोर्ट्स कहलाती है। वैसे यह बहुत नया चलन नहीं है, 90 के दशक से ही इण्टरनेट की शुरुआत के बाद से अमेरिका में खेली जाने वाली विभिन्न खेल प्रतियोगिताओं जैसे, मेजर लीग बेसबॉल, नेशनल फ़ुटबाल लीग, एनबीए लीग आदि में विभिन्न वेबसाइटों के द्वारा इस क़िस्म की फ़ैण्टेसी टीमें बनाकर लोगों को रातों-रात अमीर बन जाने का प्रलोभन देना शुरू किया गया था।1990 के दशक में इस क़िस्म की फ़ैण्टेसी इलेवन ऐप्स खेलों के पूरे सत्र के लिए बनायी जाती थीं, जो 2000 के दशक तक आते-आते हर मुक़ाबले तक के लिए ऐसे फ़ैण्टेसी टीम बनाने का चलन शुरू हो गया। भारत में सट्टेबाज़ी ऐप्स का चलन मुख्यत आईपीएल के आने के बाद शुरू हुआ।

वर्ष 2021 में फ़ैण्टेसी स्पोर्ट्स का कुल कारोबार 5200 करोड़ रुपये तक पहुँच चुका है। यह अनुमान है कि वर्ष 2024 तक फ़ैण्टेसी स्पोर्ट्स का भारत में कुल व्यापार 3.7 अरब डॉलर पार कर जायेगा।

वास्तव में इस तरह की सट्टेबाज़ी आभासी पूँजी की अवधारणा के इर्द-गिर्द घूमती है। सट्टेबाज़ी की पूरी प्रक्रिया में कोई भी वास्तविक मूल्य पैदा नहीं होता है। यहाँ बस मूल्य का स्थानान्तरण होता है। ये तमाम ऐप्स जीतने पर बड़े इनाम का दावा करते हैं, इन ऐप्स पर अपनी फ़ैण्टेसी टीम बनाने के लिए एक निश्चित शुल्क भी लिया जाता है। यह ज़ाहिर है कि इन ऐप्स पर फ़ैण्टेसी टीम बनाकर सट्टा लगाने वाला प्रत्येक व्यक्ति तो नहीं जीतेगा, बल्कि एक असम्भव प्रतीत होने वाले बेहद छोटे प्रतिशत लोगों को ही इससे जीत का मुनाफ़ा मिलता है। असली जीत इन ऐप्स को ही होती है, जिनका कारोबार अरबों डॉलर तक पहुँच चुका है। एक अनुमान के मुताबिक़ अकेले ड्रीम इलेवन ऐप का ही पिछले वर्ष का कारोबार 150 मिलियन डॉलर तक का था।

कई अध्ययनों में यह बात सामने आयी है कि इन फ़ैण्टेसी टीम ऐप्स में पैसा लगाने वाले लोग अधिकतर 19 से 25 आयु वर्ग के छात्र-युवा, प्रवासी मज़दूर ही हैं। कई मामलों में मज़दूर उधार लेकर इन फ़ैण्टेसी ऐप्स में पैसे लगाते हैं, और जब वे पैसे हार जाते हैं, तो फिर उधार न चुका पाने की सूरत में कई बार उन्हें आत्महत्या करने को भी मजबूर होना पड़ता है। इसके हालिया उदाहरण भी हमारे सामने हैं। वर्ष 2020 में तेलंगाना में मज़दूरी करने वाले झारखण्ड के 19 वर्षीय मज़दूर ने ऐसी किसी ऐप पर पैसे हारने के बाद आत्महत्या कर ली थी। इसी वर्ष पुडुचेरी में एक युवक ने भी ऐसे ही फ़ैण्टेसी स्पोर्ट्स ऐप में पैसे हारने के बाद आत्महत्या कर ली व एक ऑडियो क्लिप भी छोड़ी जिसमें उसने ऐसे ऐप्स पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग की।

आज पूँजीवादी व्यवस्था के पास लोगों को देने के लिए महँगाई और बेरोज़गारी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इन ऐप्स के ज़रिए इस व्यवस्था द्वारा यह प्रयास किया जा रहा है कि लोग जल्दी अमीर बनने के भ्रमजाल में फँसे रहें और अपनी समस्याओं के मूल कारण के बारे में न सोचें। इन्हें इसी तरह से प्रचारित भी किया जाता है। बड़े नामचीन खिलाड़ी इनके विज्ञापनों में नज़र आते है, लोगों से अपील करते हैं कि एक बार पैसे लगाओ और फिर मालामाल बन जाओ,आपकी सारी वित्तीय और आर्थिक समस्याओं का समाधान आपके स्मार्टफ़ोन में ही मौजूद है! बड़े पैमाने पर मज़दूर इन लुभावने विज्ञापनों की चकाचौंध में फँस जाते हैं, और कालान्तर में इन फ़ैण्टेसी टीम ऐप्स की लत में पड़ जाते हैं। ये ऐप्स मज़दूरों को सिर्फ़ वित्तीय तौर पर पंगु नहीं बनाते बल्कि उनकी राजनीतिक सचेतनता को भी भोथड़ा कर देते हैं। इस लत में पड़कर वे अलगाव के शिकार हो जाते हैं, एक ऐसा कृत्रिम व आभासी जीवन जीने लग जाते हैं जो वास्तव में है ही नहीं।

आज मज़दूर वर्ग के बीच लगातार यह प्रचारित करने की आवश्यकता है कि इस क़िस्म के प्रलोभन खोखले हैं। ऐसे सट्टेबाज़ी ऐप्स आपकी समस्याओं का हल करने का कोई विकल्प नहीं हैं बल्कि पूँजीवाद का ही एक आर्थिक और सांस्कृतिक जाल है। अगर उन्हें अपने जीवन स्तर में सुधार चाहिए तो फिर मालिकों की जमात यानी पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ अपने रोज़मर्रा की माँगों को लेकर एकजुट होना होगा। साथ ही, ऐसे फ़ैण्टेसी टीम ऐप्स जो मूल रूप से सट्टेबाज़ी ऐप्स ही हैं, उन पर पूर्ण प्रतिबन्ध की माँग के लिए भी मौजूदा सरकार पर दबाव बनाना होगा।

शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी

हावर्ड फ़ास्ट

अपने संघर्ष के दौरान मज़दूर वर्ग ने बहुत-से नायक पैदा किये हैं। अल्बर्ट पार्सन्स भी मज़दूरों के एक ऐसे ही नायक हैं। यह कहानी अल्बर्ट पार्सन्स और शिकागो के उन शहीद मज़दूर नेताओं की है, जिन्हें आम मेहनतकश जनता के हक़ों की आवाज़ उठाने और 'आठ घण्टे के काम के दिन' की माँग को लेकर मेहनतकशों की अगुवाई करने के कारण 11 नवम्बर 1887 को शिकागो में फाँसी दे दी गयी। मई दिवस के शहीदों की यह कहानी हावर्ड फ़ास्ट के मशहूर उपन्यास 'अमेरिकन' का एक हिस्सा है। इसमें शिलिंग नाम का एक बढ़ई मज़दूर आन्दोलन से सहानुभूति रखने वाले जज पीटर आल्टगेल्ड को अल्बर्ट पार्सन्स की ज़िन्दगी और शिकागो में हुई घटनाओं और मज़दूर नेताओं की क़ुर्बानी के बारे में बता रहा है। शिलिंग लेबर पार्टी से जुड़ा एक ईमानदार मज़दूर कार्यकर्ता है, जो पार्सन्स को तब से जानता है जब वह समाजवादी नहीं बना था। – सम्पादक

"तुम्हें याद है आज से डेढ़ साल पहले हमने तय किया था कि साल का एक दिन अमेरिकी मज़दूरों को समर्पित किया जाये, एक दिन जो हमारा होगा, जो हमारी एकता और आठ घण्टे काम के संघर्ष में हमारे दृढ़संकल्प का प्रतीक होगा। हमने पहली मई का दिन चुना। क़सम से, तुमने सोचा होगा कि हमने अपने लिए एक दिन, अपने लिए एक छुट्टी माँगकर देश की बुनियाद ही नष्ट कर दी। तुम्हें याद होगा कि जैसे-जैसे वह दिन क़रीब आया, क्या हुआ। पिंकरटन्स की पूरी फ़ौज शिकागो में उमड़ पड़ी। पुलिसवाले सर से पाँव तक हथियारों से लैस हो गये। सड़कों पर घूमने वाले सारे आवारों को हमारे खिलाफ़ तैनात कर दिया गया। नेशनल गार्ड को सावधान कर दिया गया। यहाँ तक कि शिकागो में शान्ति बनाये रखने के लिए फ़ौज की टुकड़ियों की माँग की गयी। लेकिन क्या हमसे शान्ति को ख़तरा था? हमने तो बस आठ घण्टे काम के आन्दोलन के लिए अपनी एकजुटता प्रदर्शित करने के लिए एक दिन माँगा था। और शनिवार का वह दिन आया और बीत गया। कोई गड़बड़ी नहीं हुई। गड़बड़ी तो हमारी दुश्मन थी। हमें अपना उद्देश्य पता था। हम सारे देश में संगठित थे — हिंसा से हमें क्या लाभ मिलता?

"लेकिन 3 मई को, सोमवार के दिन एक बुरी बात हो गयी। तुम जानते ही हो इसके बारे में, पर मैं हर चीज़ को उसकी जगह पर रखना चाहूँगा। मैकार्मिक कारख़ाने पर आयोजित प्रदर्शन सिर्फ़ लम्बर शोवर्स यूनियन का ही प्रदर्शन नहीं था, वहाँ मैकार्मिक कारख़ाने के भी एक हज़ार से ज़्यादा हड़ताली मज़दूर थे। हालाँकि आगस्त स्पाइस वहाँ बोला था पर उसने गड़बड़ी करने का नारा नहीं दिया था। उसने एकता के लिए आह्वान किया था। यह कोई अपराध है क्या? गड़बड़ी तो तब शुरू हुई जब हड़ताल तोड़ने वाले मज़दूर कारख़ाने से बाहर जाने लगे। हड़तालियों ने उन्हें देख लिया और बुरा-भला कहना, गालियाँ देना शुरू कर दिया जो यहाँ दोहराने लायक़ नहीं है। उस दृश्य की कल्पना करो। दो यूनियनों के छह हज़ार हड़ताली मज़दूर बाहर सभा कर रहे हैं और उनकी नज़रों के सामने से हड़ताल-तोड़क चले जा रहे हैं। मैंने देखा—वहाँ क्या हुआ। मैकार्मिक के हड़ताली कारख़ाने की ओर बढ़ने लगे। किसी ने उनसे कहा नहीं था, किसी ने उन्हें उकसाया नहीं था। उन्होंने सुनना बन्द कर दिया था और वे पफाटकों की ओर बढ़ रहे थे। हो सकता है उन्होंने कुछ पत्थर उठा रखे हों, हो सकता है उन्होंने भद्दी बातें कहीं हों—लेकिन उनके कुछ करने से पहले ही कारख़ाने की पुलिस ने गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। हे भगवान, लगता था जैसे कोई यु(हो। हड़ताली निहत्थे थे और पुलिस मानो चाँदमारी कर रही हो, पिस्तौलें हाथ भर की दूरी पर थीं, रायफ़लें भी तनी हुई थीं—धाँय, धाँय, धाँय...।

"लोगों का कहना है कि कारख़ाने ने कुमुक माँगी थी। इसमें कुछ वक़्त लगता, लगता या नहीं, लेकिन मिनटों में पुलिसवालों से लदी एक गश्ती गाड़ी आ धमकी और उनके पीछे दौड़ते हुए आयी दो सौ हथियारबन्द आदमियों की टुकड़ी।

"ऐसा दृश्य पुरानी दुनिया में सम्भव था, यहाँ नहीं। मज़दूर ऐसे गिर रहे थे जैसे लड़ाई का मैदान हो। जब उन्होंने टिककर खड़े होने की कोशिश की तो पुलिसवाले चढ़ दौड़े और लाठियों से पीटकर उन्हें अलग कर दिया। जब वे तितर-बितर होकर दौड़े तो पुलिसवालों ने उनका पीछा किया, पीछे से लाठियाँ बरसायीं। देखा नहीं जाता था। यह क्रूरता थी, वहशीपन था। भाग जाने का मन कर रहा था। लगता था कै हो जायेगी। और यही किया मैंने। पर स्पाइस भागकर 'आरबाइटेर ज़ाइटुंग' ;श्रमिक समाचारपत्राद्ध के दफ़्तर पहुँचा और इस घटना का विरोध करने के लिए हे मार्केट चौराहे पर मीटिंग की फ़ौरी ख़बर चारों ओर भिजवायी। यह थी शुरुआत। इसलिए शुरू हुआ यह सब क्योंकि हम अपने दिन, मई दिवस पर शान्त और संयमित थे और वे इसे गवारा नहीं कर सकते थे। बन्दूक़ों से, बन्दूक़ों से वे असली गड़बड़ी फैला सकते थे और तब लोग चीख़-चीख़कर क्रान्ति की बात करते।

"पर असल बात यह है कि पार्सन्स वहाँ नहीं था। ठीक वैसे ही जैसे पार्सन्स उस वक़्त हे मार्केट में नहीं था जब बम फेंका गया। सिर्फ़ मैकार्मिक के और लकड़ी ढोने वाले मज़दूर ही हड़ताल पर नहीं थे। पुलमैन वाले, ब्रुन्ज़विक वाले, पैकिंग कारख़ानों के मज़दूर, सभी हड़ताल पर थे और शिकागो ही नहीं सेण्ट लुई, सिनसिनाटी, न्यूयार्क, सान फ़्रांसिस्को हर जगह हड़ताल थी। पार्सन्स कहीं भी हो सकता था, पर वह यहाँ नहीं था। पार्सन्स थका हुआ और बीमार था। वह घर आता और बिस्तर पर ढह जाता। मज़दूरों के संगठनकर्ता की ज़िन्दगी ज़्यादा नहीं चलती। पहले पेट जवाब देता है, फिर टाँगें और जब आपको अच्छी तरह पीटा और लाठियों से कूँचा जा चुका हो, तब सिर और दिमाग़ भी जवाब देने लगते हैं।

"तो उन्होंने अगले दिन हे मार्केट में मीटिंग रखी। हे मार्केट को उन्होंने इसलिए चुना था क्योंकि वह जगह बड़ी थी। स्पाइस तो जैसे पागल हो उठा था। घायल और मर रहे आदमियों की तस्वीर उसके दिमाग़ से हटती ही नहीं थी। वह सोच रहा था कि हज़ारों-हज़ार मज़दूर विरोध प्रदर्शन में आ जायेंगे। लेकिन मैकार्मिक तो एक विराट संघर्ष का छोटा-सा हिस्सा भर था और मज़दूरों की हार तो शुरू हो चुकी थी। हर जगह उन्हें कुचला और तोड़ा जा रहा था। एक और मीटिंग से भला क्या हो जाता? पर स्पाइस को कम मत समझना। वह बहुत तेज़ आदमी था, और ईमानदार भी। विदेशों में जन्मे मज़दूरों के बीच उसकी वही हैसियत थी जो अमेरिकी मज़दूरों के बीच पार्सन्स की थी। वह सोचता था कि यह एक ऐसा मौक़ा है जिसे गँवाना नहीं चाहिए। अगर हे मार्केट में बीस हज़ार मज़दूर इकट्ठा हो जाते हैं तो 'काम के घण्टे आठ' आन्दोलन का रुख़ बदल सकता है।...

"लेकिन अगली शाम को हे मार्केट में बीस हज़ार लोग नहीं इकट्ठा हुए। जब स्पाइस वहाँ पहुँचा तो बहुत थोड़े लोग थे। शाम गुज़रने के साथ लोग उधर बढ़े तो सही, पर कभी भी भीड़ तीन हज़ार तक भी नहीं पहुँची। चूँकि भीड़ कम थी इसलिए उन्होंने मीटिंग की जगह हे मार्केट से बदलकर दे प्लेन कर दी, जो लेक और रैंडोल्फ़ के बीच की एक जगह थी। लेकिन मैं तुम्हें पार्सन्स के बारे में बता रहा हूँ। सिर्फ़ इसीलिए तो आज सुबह तुम्हारा वक़्त बरबाद कर रहा हूँ। मैं तुम्हें बता रहा हूँ कि कैसे पार्सन्स वहाँ नहीं था, कैसे उसे मीटिंग के बारे में पता तक नहीं था। वैसे तो सैम फ़ील्डेन (पार्सन्स और स्पाइस का दोस्त और मज़दूर संगठनकर्ता) भी हे मार्केट की मीटिंग के बारे में नहीं जानता था।

"लेकिन फिर पार्सन्स के बारे में बात करें। उसने दो मई को शिकागो छोड़ दिया था और भाषण देने सिनसिनाटी चला गया था। तीन मई के पूरे दिन जब मैकार्मिक कारख़ाने पर यह भयानक घटना घट रही थी, तब पार्सन्स यहाँ था ही नहीं। वह चार की सुबह घर पहुँचा। वह सारी रात सोया नहीं था। जब लूसी उसे बता रही थी कि यहाँ क्या हुआ तब वह थकान से निढाल हो रहा था। ख़ुद उसने सिनसिनाटी में जो कुछ देखा था उससे कुछ अलग नहीं था यहा। मालिक लोग नाराज़ थे। मालिकों के लिए उन्हें चुनौती देने की जुर्रत करने वाले गन्दे राक्षस को कुचल डालना ज़रूरी था, और वे उसको कुचलने में लगे हुए थे। और हर कहीं वह टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। गैटलिंग बन्दूक़ के सामने भूखे, थके, निहत्थे आदमी की क्या बिसात थी!

"पार्सन्स पत्नी का बयान सुनता रहा। अपने दोनों बच्चों के साथ खेलता रहा। उसने पत्नी की दी हुई कॉफ़ी पी, पावरोटी का एक टुकड़ा खाया। उसने लूसी से कहा, 'हमें कुछ करना ही होगा।' पर करने को था ही क्या? वह बोली, 'तुम बहुत थक गये हो। आज रात मीटिंग नहीं कर पाओगे।' वह हे मार्केट की मीटिंग की बात नहीं कर रही थी। उस मीटिंग के बारे में तो वह जानती ही नहीं थी। 'मीटिंग तो करनी ही होगी,' पार्सन्स ने कहा। पार्सन्स के नेतृत्व में काम करने वालों को हम लोग 'अमेरिकी ग्रुप' कहते थे क्योंकि उनमें से ज़्यादातर अमेरिका में पैदा हुए मज़दूर थे। उसने तय किया कि मीटिंग होगी और बेहद थके होने के बावजूद 'डेली न्यूज़' में घोषणा करवाने चला गया। फिर वह घर लौटा और बच्चों के साथ थोड़ी देर और खेला। फिर सो गया। जागने पर वह काफ़ी अच्छा महसूस कर रहा था। पहले जैसा, हँसता-हँसाता। लूसी बताती है कि उसने हार की नहीं जीत की बातें कीं, और कहा कि उसके बच्चे एक ऐसे अमेरिका में बड़े होंगे जो दुनिया को न्याय और आज़ादी की ओर ले जायेगा।

"शाम को वह, लूसी और दोनों बच्चे मीटिंग में गये। हमेशा की तरह वह और लूसी साथ-साथ चल रहे थे, प्रेमियों की तरह एक-दूसरे को निहारते हुए।

"इस बीच हे मार्केट की मीटिंग में लोग तो कम थे ही, वह शुरू ही नहीं हो पा रही थी। कैसी बुरी रात थी! डरावनी, कभी भी पानी बरसने का ख़तरा बना हुआ था। बारिश के डर से काफ़ी लोग नहीं आये थे। जो आये थे वे इन्तज़ार कर रहे थे कि कब मीटिंग शुरू हो और ख़त्म हो। लेकिन जानते ही हो, सब पार्सन्स पर निर्भर थे, पर पता चला कि हरेक ने पार्सन्स को मीटिंग में लाने की बात किसी और पर छोड़ रखी है। स्पाइस मीटिंग को पार्सन्स के बिना शुरू नहीं करना चाहता था और जब किसी ने 'डेली न्यूज़' की घोषणा के बारे में बताया तो स्पाइस बोला कि वह ख़ुद पार्सन्स को लेने जायेगा। लेकिन ऐसा करने से तो मीटिंग की जान ही निकल जाती। उन्होंने स्पाइस को बोलना शुरू करने के लिए तैयार कर लिया और कोई दूसरा पार्सन्स को ढूँढ़ने चला गया। स्पाइस ने बोलना शुरू किया। उसने जो कहा उसे दोहराने की ज़रूरत नहीं। अख़बारों में काफ़ी छप चुका है। लेकिन यह याद करने की ज़रूरत है कि उसने मुख्य तौर पर 'काम के घण्टे आठ' आन्दोलन की बात की। उसने कहा कि सबकुछ सिर्फ़ इसीलिए ख़त्म नहीं हो जाना चाहिए कि मज़दूरों पर लाठियाँ-गोलियाँ बरसायी गयी हैं। हमें और एकजुट होना होगा, और कठिन संघर्ष करना होगा। और उसने बताया कि पिछले दिन मैकार्मिक पर क्या हुआ था। इस बीच कोई दूसरी वाली मीटिंग में पार्सन्स के पास पहुँच चुका था। वहाँ फ़ील्डेन भी था। वह तो होता ही, क्योंकि भले ही वह अंग्रेज़ है पर अमेरिकियों के साथ मुझसे बेहतर ढंग से बात कर सकता है। पार्सन्स बुरी तरह थका हुआ था पर उसने कहा कि वह आयेगा और फिर से बोलेगा। फ़ील्डेन भी उसके साथ आया। फ़ील्डेन लम्बा-तड़ंगा है। यार्कशायरवालों की तरह उसे ग़ुस्सा देर से आता है पर चारों ओर जो कुछ हो रहा था उसे देख-सुनकर वह भीतर ही भीतर उबल रहा था। उसके मन में कड़वाहट भर गयी थी। और जब वह बोलता था तो यह कड़वाहट बाहर आ जाती थी।

"ख़ैर! पार्सन्स अपनी पत्नी और दोनों बच्चों के साथ दे प्लेन स्ट्रीट गया

(पेज 15 पर जारी)

शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी

(पेज 14 से आगे)

जहाँ स्पाइस की मीटिंग थी। बच्चे तब तक थक चुके थे। एक लूसी की गोद में था, दूसरा पार्सन्स की। हाँ-हाँ, यह मैं तुम्हारी सहानुभूति पाने के लिए ही कह रहा हूँ। आज के बाद वक़्त नहीं होगा। और मुझे तुमसे सहानुभूति पाने में कोई शर्म नहीं है।

"अभी भी काले आसमान के नीचे क़रीब दो हज़ार आदमी पार्सन्स का इन्तज़ार कर रहे थे। तुम नहीं समझोगे। पर मैंने दो-दो घण्टे खड़े रहकर पार्सन्स के बोलने का इन्तज़ार किया है। वहाँ दो गाड़ियाँ थीं। एक गाड़ी का इस्तेमाल भाषण देने वाले मंच की तरह कर रहे थे और दूसरी पर लोग बैठे थे, पर उन्होंने लूसी पार्सन्स और बच्चों के लिए जगह बना दी। पार्सन्स को देखकर स्पाइस को राहत मिली। तुम्हीं सोचो, कैसा लगेगा जब तुम्हारी नज़र में इतना महत्त्वपूर्ण मौक़ा हो और भीड़ खिसकना शुरू कर दे।

"स्पाइस को ऐसा ही लग रहा था। तुम तो ख़ुद ही काफ़ी दिनों से राजनीति में रहे हो। समझ सकते हो कि अगर श्रोता मीटिंग छोड़कर जाने लगें, और वह भी एक-एक करके नहीं, झुण्डों में, तो अच्छे से अच्छा आदमी भी पस्त हो जायेगा। बहरहाल, जब पार्सन्स बोलने के लिए खड़ा हुआ तो नौ बज चुके थे। लोग रुक गये। ज़रा उसकी हालत के बारे में सोचो। वह तीस घण्टों से नहीं सोया था। एक मीटिंग में बोलकर सीधे वहाँ पहुँचा था। वह सबकुछ जिसके लिए वह लड़ता रहा था, उसे अपनी आँखों के सामने टूटते, बिखरते देख रहा था। फिर भी वह बोला, और अच्छी तरह बोला। उसने 'आठ घण्टे के काम' आन्दोलन से बात शुरू की, फिर मज़दूरों के बारे में बोला। मैं नहीं समझता, अमेरिका में मज़दूरों के बारे में कोई पार्सन्स से ज़्यादा जानता होगा। वह इज़ारेदारी के बढ़ने के बारे में बोला—यह सब ठीक है। तुमने उसका बयान पढ़ा है, तुम जानते हो वह किसके बारे में बोला। लेकिन ये बातें सरासर झूठी हैं कि उसने पहले से लिखकर तैयार किया हुआ कोई भाषण दिया, यह बिल्कुल झूठ है। उसके दिमाग़ में जो बातें आती गयीं, वह बोलता गया। कोई लिखा हुआ भाषण नहीं था और न ही किसी ने उसकी बातों को लिखा था। हाँ, अगले दिन एक भाषण का आविष्कार कर लिया गया, पर वह पार्सन्स का नहीं था।

"और फिर उसने बात ख़त्म की और फ़ील्डेन का परिचय कराया। यहाँ बैठकर तुमसे बातें करते हुए फ़ील्डेन की बातों को याद करना दिलचस्प है क्योंकि फ़ील्डेन क़ानून के बारे में बोला था। धनिकों का क़ानून, ग़रीबों का नहीं, धनिकों की अदालतें, ग़रीबों की नहीं। ठीक है, मैं पार्सन्स के बारे में ही बताता हूँ। बैठो, और मेरी बात सुनो, या हो सकता है तुम मेरी बात न सुनो और सोचो कि यह बेवक़ूफ़ाना बढ़ई बेकार में तुम्हारा वक़्त बरबाद कर रहा है। लेकिन इस बढ़ई का लेबर पार्टी में राजनीतिक प्रभाव है, तुम्हें उसकी बातें सुननी चाहिए और उसकी भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहिए। ठीक है, फिर मुझे अपनी तरह से बताने दो।

"फ़ील्डेन ने बोलना शुरू किया तो पार्सन्स गाड़ी के पास गया और छोटे बच्चे को उठा लिया। तभी बारिश शुरू हो गयी। एक बच्चा रोने लगा। जो कुछ हुआ उसकी रोशनी में इस बात पर ग़ौर करना। बच्चे को गोद में लिए हुए पार्सन्स मंच तक गया जहाँ से फ़ील्डेन बोल रहा था। उसने कहा कि बारिश हो रही है, क्यों न वे जेपफ हॉल में चले चलें जहाँ अक्सर उनकी मीटिंगें हुआ करती थीं। उसने ऐसा इसलिए सोचा क्योंकि उसकी गोद में बच्चा था और वह ख़ुद बहुत थका हुआ था। लेकिन दो हज़ार लोगों को सड़कों से होकर शान्ति के साथ ले जाना और हॉल में ले जाकर व्यवस्थित ढंग से बैठाना कैसे होता है। 'मैं बस दो मिनट में बात ख़त्म करता हूँ,' फ़ील्डेन बोला। पार्सन्स ने सिर हिलाया पर वह बच्चों के साथ बारिश में वहाँ खड़ा नहीं रह सकता था। भीड़ छँट रही थी। उस वक़्त तक वहाँ क़रीब छः-सात सौ लोग होंगे, जो अभी भी बारिश में खड़े भाषण सुन रहे थे।

"तो पार्सन्स, लूसी, दोनों बच्चे और एक दोस्त मीटिंग से जेफ़ हॉल चले गये। वे थोड़ी देर के लिए ही गये थे वहाँ, कुछ लोगों से मिलने, और उसके बाद उन्हें घर जाना था। लेकिन धमाका उन्होंने वहीं पर सुना।

"और वह धमाका, वह बम—तुम तो जानते ही हो कैसे हुआ, या हो सकता है न जानते हो। इस बात को बहुत दिन हो गये हैं, हो सकता है मेरे अच्छे दोस्त को बात याद न हो। फ़ील्डेन बोल ही रहा था कि वार्ड और बोनफील्ड के नेतृत्व में दो सौ पुलिसवाले भीड़ को ठेलते हुए आ धमके। क्यों? कैसे? किसलिए? उस शान्त, व्यवस्थित मीटिंग के लिए जो ख़ुद बिखर रही थी? मुश्किल से पाँच सौ लोग बचे होंगे उस वक़्त तक। और सिपाहियों के आगे खड़ा वार्ड चिल्लाने लगा कि वे फ़ौरन तितर-बितर हो जायें। फ़ील्डेन क्या करता? बोलना बन्द करके वह गाड़ी से उतरने लगा। भीड़ सड़क के दूसरी ओर जाने लगी। तभी बम फेंका गया, भगवान जाने कहाँ से। वह पुलिसवालों के सामने ही पफटा। एक वहीं मर गया, कई घायल हुए। किसने फेंका था बम? डेढ़ साल से इस दुख की नगरी में हमने इसके सिवा कुछ नहीं सुना है कि बम किसने फेंका। भगवान या शक्ति या भाग्य जो भी हो, मैं उसकी क़सम खाकर कहता हूँ जज, कि हमारे किसी आदमी ने बम नहीं फेंका। हाँ, यही राय है मेरी। और मेरे पूर्वाग्रह हैं। मैं एक मज़दूर हूँ और निश्चित तौर पर मेरे पूर्वाग्रह हैं। पर अब जबकि कुछ घण्टों में पार्सन्स मरने जा रहा है, मैं यह क़सम खाकर कहता हूँ। मुझे हिंसा से नफ़रत है। मैं क़सम खाकर जो कह रहा हूँ, उस पर मुझे विश्वास है। यह बम हमारे दुश्मनों ने फेंका था। तब से अब तक जो कुछ हुआ है उस पर ग़ौर करो और सोचो कि क्या इसके अलावा कोई और बात हो सकती थी? सोचो कि बम फेंके जाने के तुरन्त बाद क्या हुआ, कैसे पुलिसवालों ने बन्दूक़ें तान लीं और गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। इसके आगे तो एक दिन पहले की मैकार्मिक की घटना मामूली पड़ गयी थी। उन्होंने पागलों की तरह गोलियाँ चलायीं। उन्होंने मज़दूरों को, उनकी बीवियों को और बच्चों को भून डाला। हम निहत्थे थे। हमारी तरफ़ से कोई गोली नहीं चली। लेकिन पुलिस गोलियाँ बरसाती रही। भीड़ तितर-बितर हो गयी थी और लोग चीख़ते हुए चारों ओर भाग रहे थे।

"यह है सच्चाई," छोटे क़द के उस बढ़ई ने कहा, "मैंने वहाँ मौजूद सैकड़ों लोगों से यही कहानी सुनी है। यही सच्चाई है।"

●

उन्हें शुक्रवार को फाँसी दी गयी। अगले दिन अख़बारों में फाँसी के विस्तृत ब्योरे और ढेरों सम्पादकीय छपे थे—मरने वाले व्यक्तियों पर, क़ानून और व्यवस्था पर, जनतंत्र पर, संविधान और इसके ढेरों संशोधनों पर—जिनमें से कुछ को 'बिल ऑफ़ राइट्स' कहा जाता है—क्रान्ति, गणतंत्र के संस्थापकों और गृहयुद्ध के बारे में। इसी के साथ छपी थीं अन्त्येष्टि की सूचनाएँ। शहर के अधिकारियों ने पाँचों मृत व्यक्तियों—लिंग्ग, जो अपनी कोठरी में मर गया था, पार्सन्स, स्पाइस, पिफशर और एंजिल के सम्बन्धियों और मित्रों को उनके शरीर प्राप्त कर लेने की अनुमति दे दी थी। ये मित्र और सम्बन्धी यदि चाहें तो उन्हें सार्वजनिक अन्त्येष्टि करने की भी इजाज़त थी। मेयर रोश ने घोषणा कर दी थी कि वाइल्डहाइम क़ब्रगाह जाते हुए मातमी जुलूस किन-किन सड़कों से गुज़र सकता था। यह सब बारह से दो के बीच होना था। सिर्फ़ मातमी संगीत बज सकता था। हथियार नहीं ले जाये जा सकते थे, झण्डे और बैनर लेकर चलना मना था। अख़बारों के मुताबिक़ हालाँकि ये लोग समाज के घोषित दुश्मन थे, अपराधी और हत्यारे थे, फिर भी हो सकता है कि अन्त्येष्टि में शामिल होने के लिए कुछ सौ लोग चले आयें। और संविधान के उस हिस्से के मुताबिक़, जो धार्मिक स्वतंत्रता की गारण्टी देता है, इस अन्त्येष्टि की इजाज़त देना न्यायसंगत ही था।

इतवार को जज ने पत्नी से कहा कि वह बाहर टहलने जा रहा है। हालाँकि एम्मा को शक था कि वह टहलते हुए कहाँ जायेगा पर वह कुछ बोली नहीं। न ही उसने यह कहा कि इतवार की सुबह उसके अकेले बाहर जाने की इच्छा कुछ अजीब थी। लेकिन दरअसल, यह कोई ताज्जुब की बात नहीं थीं, जुलूस के रास्ते की ओर जाते हुए जज ने महसूस किया कि वह तो हज़ारों-हज़ार शिकागोवासियों में से बस एक है। और फिर ऐसा लगने लगा मानो क़रीब-क़रीब आधा शहर शिकागो की उदास, गन्दी सड़कों के दोनों ओर खड़ा जुलूस का इन्तज़ार कर रहा है।

सुबह ठण्डी थी और वह यह भी नहीं चाहता था कि लोग उसे पहचानें। इसलिए उसने कोट के कॉलर उठा लिये और हैट को माथे पर नीचे खींच लिया। उसने हाथ जेबों में ठूँस लिये और शरीर का बोझ कभी एक ठिठुरे हुए पैर तो कभी दूसरे पर डालता हुआ इन्तज़ार करने लगा।

जुलूस दिखायी पड़ा। यह वैसा नहीं था जिसकी उम्मीद थी। वैसा तो क़तई नहीं था जैसी उम्मीद करके शहर के अधिकारियों ने इजाज़त दी थी। कोई संगीत नहीं था, सिवाय हल्के पदचापों और औरतों की धीमी सिसकियों के और बाक़ी सारी आवाज़ें, सारे शोर जैसे इनमें डूब गये थे। जैसे सारे शहर को ख़ामोशी के एक विशाल और शोकपूर्ण कफ़न ने ढँक लिया हो।

पहले झण्डा लिये हुए एक आदमी आया, जुलूस का एकमात्र झण्डा, एक पुराना रंग उड़ा हुआ सितारों और पट्टियोंवाला झण्डा जो गृहयुद्ध के दौरान गर्व के साथ एक रेजीमेण्ट के आगे चलता था। उसे लेकर चलने वाला गृहयुद्ध में लड़ा एक सिपाही था, एक अधेड़ उम्र का आदमी जिसका चेहरा ऐसा लग रहा था मानो पत्थर का गढ़ा हो।

फिर आयीं अर्थियाँ और ताबूत। फिर पुरानी, खुली हुई घोड़ागाड़ियाँ आयीं, जिनमें परिवारों के लोग थे। उनमें से एक में आल्टगेल्ड ने लूसी पार्सन्स को देखा, वह अपने दोनों बच्चों के साथ बैठी थी और निगाहें सीधी सामने टिकी हुई थीं।

फिर आये मरने वालों के अभिन्न दोस्त, उनके कामरेड। वे चार-चार की क़तार में चल रहे थे, उनके चेहरे भी उदास थे, जैसे गृहयुद्ध के सिपाही का चेहरा था।

फिर अच्छे कपड़ों में पुरुषों और स्त्रियों का एक समूह आया। उनमें से कइयों को आल्टगेल्ड जानता और पहचानता था—वकील, जज, डॉक्टर, शिक्षक, छोटे व्यापारी और बहुत-से दूसरे जो इन पाँचों मरने वालों को बचाने की लड़ाई में शामिल थे।

फिर आये मज़दूर जिनकी कोई सीमा ही नहीं थीं। वे आये थे पैकिंग करने वाली कम्पनियों से, लकड़ी के कारख़ानों से, मैकार्मिक और पुलमैन कारख़ानों से। वे आये थे मिलों से, खाद की खत्तियों से, रेलवे यार्डों से और कनस्तर गोदामों से। वे आये थे उन सरायों से जिनमें बेरोज़गार रहते थे, सड़कों से, गेहूँ के खेतों से, शिकागो और एक दर्जन दूसरे शहरों की गलियों से। बहुत-से अपने सबसे अच्छे कपड़े पहने हुए थे, अपना एकमात्र काला सूट जिसे पहनकर उनकी शादी हुई थी। बहुतों के साथ उनकी पत्नियाँ भी थीं, बच्चे भी उनके साथ चल रहे थे। कुछ ने बच्चों को गोद में उठा रखा था। लेकिन बहुतेरे ऐसे भी थे जिनके पास काम के कपड़ों के सिवा कोई कपड़े नहीं थे। वे अपनी पूरी वर्दी और नीली जींस और फ़लालैन की क़मीज़ें पहने हुए थे। चरवाहे भी थे जो पाँच सौ मील से अपने घोड़ों पर यह सोचकर आये थे कि शिकागो में इन लोगों की सज़ा माफ़ करायी जा सकती है क्योंकि यहाँ के लोगों में विश्वास और इच्छाशक्ति है। और जब इसे नहीं रोका जा सका तो वे अर्थी के साथ चलने के लिए रुक गये थे। वे अपने बेढंगे ऊँची एड़ियों वाले जूतों में चल रहे थे। उनमें शहर के आसपास के देहातों के लाल चेहरोंवाले किसान थे, इंजन ड्राइवर थे और विशाल झीलों से आये नाविक थे।

सैकड़ों पुलिसवाले और पिंकरटन के आदमी सड़क के दोनों ओर खड़े थे। लेकिन जब उन्होंने जुलूस को देखा तो वे चुपचाप खड़े हो गये, उन्होंने बन्दूक़ें रख दीं और निगाहें ज़मीन पर टिका लीं।

क्योंकि मज़दूर शान्त थे। सुनायी पड़ती थीं तो सिर्फ़ उनकी साँसें और चलते हुए क़दमों की आवाज़। एक भी शब्द नहीं सुनायी देता था। कोई बोल नहीं रहा था। न मर्द, न औरतें, बच्चे तक नहीं। सड़क के किनारे खड़े लोग भी ख़ामोश थे।

और अभी भी मज़दूर आते ही जा रहे थे। आल्टगेल्ड एक घण्टे तक खड़ा रहा, पर वे आते ही रहे। कन्धे से कन्धे मिलाये, चेहरे पत्थर जैसे, आँखों से धीरे-धीरे आँसू बह रहे थे जिन्हें कोई पोंछ नहीं रहा था। एक और घण्टा बीता, फिर भी उनका अन्त नहीं था। कितने हज़ार जा चुके थे, कितने हज़ार और आने बाक़ी थे, वह अन्दाज़ नहीं लगा सकता था। पर एक चीज़ वह जानता था, इस देश के इतिहास में ऐसी कोई अन्त्येष्टि पहले कभी नहीं हुई थी, सबसे ज़्यादा प्यारा नेता अब्राहम लिंकन जब मरा था, तब भी नहीं।

अनुवाद : सत्यम

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

मई दिवस 1886 से मई दिवस 2022

कितने बदले हैं मज़दूरों के हालात?

– भारत

इस वर्ष पूरी दुनिया में 136वाँ मई दिवस मनाया गया। 1886 में शिकागो के मज़दूरों ने अपने संघर्ष और क़ुर्बानियों से जिस मशाल को ऊँचा उठाया था, उसे मज़दूरों की अगली पीढ़ियों ने अपना ख़ून देकर जलाये रखा और दुनियाभर के मज़दूरों के अथक संघर्षों के दम पर ही 8 घण्टे काम के दिन के क़ानून बने।

लेकिन आज की सच्चाई यह है कि 2022 में कई मायनों में मज़दूरों के हालात 1886 से भी बदतर हो गये हैं। मज़दूरों की ज़िन्दगी आज भयावह होती जा रही है। दो वक़्त की रोटी कमाने के लिए 12-12 घण्टे खटना पड़ता है। ऊपर से फ़ासीवादी मोदी सरकार जो चार लेबर कोड लेकर आयी है, उससे मज़दूरों के शोषण की रफ़्तार और तेज़ करने के रास्ते में मालिकों-ठेकेदारों के सामने आने वाली सारी बाधाएँ दूर हो जायेंगी। आज किस तरह मज़दूरों के हालात 1886 से भी बुरे हैं, यह हम कुछ मज़दूरों के साक्षात्कार के माध्यम से जानेंगे। उससे पहले एक बार संक्षेप में जान लेते हैं कि आज से 136 साल पहले मज़दूरों की क्या स्थिति थी। काम के घण्टे कम करने के इस आन्दोलन का मज़दूरों के लिए बहुत राजनीतिक महत्व है। जब अमेरिका में फ़ैक्टरी व्यवस्था शुरू हुई, लगभग तभी यह संघर्ष उभरा। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में "सूर्योदय से सूर्यास्त" तक यही उस समय काम के घण्टे थे। चौदह, सोलह और यहाँ तक कि अट्ठारह घण्टे का कार्यकाल भी आम बात थी। 1806 में अमेरिका की सरकार ने फ़िलाडेल्फ़िया के हड़ताली मोचियों के नेताओं पर साज़िश के मुक़दमे चलाये। इन मुक़दमों में यह बात सामने आयी कि मज़दूरों से उन्नीस या बीस घण्टों तक काम कराया जा रहा था। 1834 में न्यूयॉर्क में नानबाइयों की हड़ताल के दौरान 'वर्किंग मेन्स एडवोकेट' नामक अख़बार ने छापा था – "पावरोटी उद्योग में लगे कारीगर सालों से मिस्र के ग़ुलामों से भी ज़्यादा यातनाएँ झेल रहे हैं। उन्हें हर चौबीस में से औसतन अट्ठारह से बीस घण्टों तक काम करना होता है।" हालाँकि अमेरिका में अधिक तनख़्वाहों की माँग ज़्यादा प्रचलित थी, लेकिन जब भी मज़दूरों ने अपनी माँगों को सूत्रबद्ध किया, काम के घण्टे कम करने का प्रश्न केन्द्र में रहा। जैसे-जैसे शोषण बढ़ता गया, मज़दूरों को अमानवीय रूप से लम्बे काम के दिन और भी बोझिल महसूस होने लगे।

इसके साथ ही मज़दूरों की काम के घण्टों में आवश्यक कमी की माँग भी मज़बूत होती गयी। मज़दूरों के भीतर यह अहसास अधिक से अधिक गहरा होता गया कि उनके जीवन में मानवीय जीवन जैसा कुछ भी नहीं है। उनका पूरा जीवनकाल ही एक प्रकार से पूँजीपतियों के लिए कार्यकाल बन गया है। इस गहराते अहसास के साथ मज़दूर वर्ग में इन हालात को बदलने के लिए सुगबुगाहट भी बढ़ने लगी। पहले ऑस्ट्रेलिया में 1856 में पत्थरतराश मज़दूरों द्वारा विक्टोरिया प्रान्त में 8 घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार जीता गया और बाद में 1886 में शिकागो में 1 मई को इसी माँग को लेकर आम हड़ताल की शुरुआत हुई। इस आन्दोलन का अमेरिकी पूँजीवादी सरकार ने नंगे

तरीक़े से दमन किया और बाद में एक मुक़दमे की नौटंकी करके चार मज़दूर नेताओं को फाँसी दे दी। लेकिन इन साथियों की क़ुर्बानी ज़ाया नहीं जाने दी गयी। 1900 से 1960 के बीच में ही अधिकांश देशों की पूँजीवादी सरकार को मज़दूर वर्ग के संघर्षों के दबाव में 8 घण्टे का कार्यदिवस या 40-48 घण्टे के कार्यसप्ताह का क़ानून बनाना पड़ा।

लेकिन ख़ास तौर पर 1970 से दुनिया में हालात बदलने लगे और सभी देशों के पूँजीपति वर्ग और उनकी सरकारों ने हम मज़दूरों-मेहनतकशों से ये हक़ एक-एक करके छीनना शुरू कर दिया, जो कि हमने अकूत क़ुर्बानियाँ देकर हासिल किये थे। आज हालात क्या हो गये हैं?

अब बात करते हैं 2022 में मज़दूरों के हालात के बारे में। मज़दूरों की मेहनत लूटने के लिए मालिक आज तमाम नये हथकण्डे अपना रहे हैं। श्रम क़ानून तो पहले से ही काग़ज़ों की शोभा बढ़ाने के काम आते रहे हैं और अब मोदी सरकार ने इन्हें भी ख़त्म करने की पूरी तैयारी कर ली है। औद्योगिक इलाक़ों में 8 घण्टे काम का नियम लुप्त हो चुका है, मज़दूरों से 12-12 घण्टे काम कराया जाता है। वहीं दूसरी तरफ़ बेरोज़गारों की बड़ी आबादी काम की तलाश में भटकती रहती है। आज महँगाई आसमान छू रही है और उसमें मज़दूरों की बड़ी आबादी रुपये 7000-8000 वेतन में गुज़ारा कर रही है। आइए जानते है मज़दूरों की कहानी उन्हीं की ज़ुबानी।

दुर्गा विजय बवाना औद्योगिक क्षेत्र के सेक्टर-5 में प्लास्टिक दाना लाइन में काम करते हैं। वह बताते हैं कि – "कोरोना के बाद से काम बहुत मन्दा हो गया है। एक तो मालिक ने भी कोरोना में कोई मदद नहीं की और सरकार से तो क्या ही कहें! जो भी जमा पूँजी बची थी सब ख़त्म हो गयी। पिछले साल से काम शुरू हुआ तो मालिक ने फ़ैक्टरी में से कई लोगों को निकाल दिया और अब हम 15 लोग ही बचे हैं और हमसे 12 घण्टे काम कराता है।"

सवाल: "आपके कारख़ाने में श्रम क़ानून लागू होते हैं?"

जवाब: "अब आप ख़ुद देखिए, 12 घण्टे में 11 हज़ार वेतन मिल रहा है तो ये क़ानून तो नहीं कहता! ऊपर से ये भी मालिक देने में आनाकानी करता है। कभी पैसा समय पर नहीं देता। ई.एस.आई-पी.एफ़ तो बहुत दूर की बात है। पिछले साल हमारी कम्पनी में एक मज़दूर की उँगली कट गयी थी मालिक ने प्राइवेट से पट्टी करा के भेज दिया और कुछ दिन बाद काम से निकाल दिया। पैसा बढ़ाने की बात करो तो धमकी देता है कि काम करना है करो वरना निकल जाओ बहुत हैं काम करने वाले। जबकि उसकी फ़ैक्टरी में काम करते हुए मुझे 10 साल हो गये।"

सवाल: "आपकी पगार कितनी है?"

जवाब: "8 घण्टे काम का 8 हज़ार और 12 घण्टे काम करने के बाद मुश्किल से 11 हज़ार तक हो पाते हैं। उसी में घर भी पैसा भेजना होता है, बच्चों की स्कूल की फ़ीस भी देनी होती है, यहाँ अपना भी ख़र्च निकालना होता है। ऊपर से ये महँगाई रोज़ बढ़ती जा रही है। हर चीज़ में तो कटौती कर ही चुके हैं अब तो लगता है खाने में भी कटौती करनी होगी।"

सवाल: "अपने भविष्य को लेकर क्या सोचते हैं?"

जवाब: "भविष्य आख़िर क्या ही है हमारा! सरकार, मालिक सब मिलकर हमें लूट रहे हैं। वेतन कम है काम ज़्यादा। सुबह 8.30 बजे निकलते हैं और रात के 9.30 बजे आते हैं। फिर खाना बना के सो जाते है। सुबह उठो, काम पर जाओ, खाओ और सो जाओ, यही गोल चक्कर घूमता रहता है दिन, महीनों, सालों तक। अब जब तक मज़दूर एकजुट नहीं होंगे तो क्या ही किसी का भविष्य होगा।"

यह तो बवाना के एक कारख़ाना मज़दूर की आपबीती थी। यही हालत देश में सभी अनौपचारिक-असंगठित क्षेत्र के कारख़ाना मज़दूरों के हैं। अब आइए, एक घरेलू कामगार की ज़ुबानी उनके जीवन और काम के हालात के बारे में सुनते हैं।

सुनीता घरेलू कामगार के तौर पर काम करती हैं। वह बताती हैं कि – "मुझे 20 साल हो गये कोठियों में काम करते हुए। 18 साल की थी तब से ही काम करना शुरू कर दिया था और आज तक कर रही हूँ। इतने सालों में सब कुछ बदल गया पर हमारे काम के हालात नहीं बदले। जब शुरू-शुरू में काम पर लगी थी तब 300 रुपये एक घर का मिलता था बर्तन, झाड़ू, पोंछा करने का, अब मुश्किल से हज़ार मिलता है तो बताइए इतने सालों में हर चीज़ के दाम इतने बढ़ गये पर हमारा वेतन नाममात्र के लिए ही बढ़ा है। आज पाँच घर में काम करती हूँ तब जाकर कहीं 5-6 हज़ार हो पाते हैं। वो भी सुबह से लेकर रात तक हाथ-पाँव घिसने के बाद। मालिक को बोलो पैसे बढ़ाने को तो उल्टा-सीधा बोलता है। अब हमारी भी मजबूरी है। नहीं करेंगे तो कोई और उतने में ही करेगा इसलिए चुप हो जाते हैं। बाक़ी अकेले इनसे कैसे ही लड़ सकते हैं, इसके लिए सबका इकट्ठा होना ज़रूरी है।"

देश की करोड़ों घरेलू कामगारों की यही स्थिति है, जो साथी सुनीता ने बयान की है। क्या हमारे ये हालात बदल सकते हैं? हाँ। कैसे और क्यों? इसलिए क्योंकि हम 80 फ़ीसदी हैं और हमें लूटने वाले 20 फ़ीसदी। लेकिन वे 20 फ़ीसदी एकजुट हैं और इसीलिए उनकी राजनीतिक सत्ता भी क़ायम है। हम कम नहीं हैं, पर हम कम संगठित हैं। यदि देश का मज़दूर वर्ग अपनी एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में संगठित हो जाये, तो मालिकों, धन्नासेठों, अमीरज़ादों और लुटेरों का राज ख़त्म कर मज़दूर राज को लाया जा सकता है। इन लुटेरों और जोंकों की समाज में क्या ज़रूरत है? वे समाज के लिए कौन-सी ज़रूरी चीज़ बनाते हैं? वे समाज को कौन-सी ज़रूरी सेवा देते हैं? बस उनके पास उन उत्पादन के साधनों का मौजूदा व्यवस्था में मालिकाना है, जो उत्पादन के साधन भी मज़दूर वर्ग के श्रम ने ही बनाये हैं। और हमारे पास बेचने के लिए अपनी श्रमशक्ति के अलावा कुछ नहीं है, इसलिए हम उनके पास उजरती ग़ुलामी करने को बाध्य हैं। लेकिन न तो यह 'जाहि बिधि राखे राम...' वाला मामला है और न हमारी तक़दीर की रेखा। हम इसे बदल सकते हैं, बशर्ते कि हम अपनी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी को खड़ा कर सकें, बशर्ते कि हम अपनी क्रान्तिकारी यूनियनें बना सकें।

सरकारें पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी होती हैं। सरकारों का काम मालिकों की सेवा करना है, मज़दूर मालिकों की ग़ुलामी करते रहें इसके लिए नीतियाँ बनाना है। अगर मज़दूर शोषण अन्याय के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायें तो डण्डे चलाना है, दमन करना है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए सरकार किसी भी दल की हो वह हमेशा मालिकों की ही चाकरी करती है। इसलिए भाजपा, कांग्रेस, आम आदमी पार्टी, सपा, बसपा, आदि से उम्मीद लगाने का कोई मतलब नहीं है। सरकार इस पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टी की बने या उस की, हम मज़दूरों के लिए ये कुछ भी नहीं करने वाली हैं। रास्ता एक ही है: समाजवादी क्रान्ति के ज़रिए मज़दूर राज और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना और तात्कालिक तौर पर अपनी क्रान्तिकारी यूनियनें संगठित करके पूँजीपति वर्ग के शोषण और दमन का जुझारू तरीक़े से मुक़ाबला करना।

इस मामले में 2022 में मज़दूरों के जीवन और काम के हालात कमोबेश वैसे ही बन चुके हैं जैसे कि 1886 में थे। आज भी जुझारू संघर्ष की उतनी ही शिद्दत से ज़रूरत है, जितनी तब थी। आज भी मज़दूर वर्ग की व्यापक एकजुटता की उतनी ही दरकार है, जितनी कि तब थी। सोचना हमें है कि हम अपनी निराशा, पस्तहिम्मती और पराजयबोध त्यागकर मई दिवस के शहीदों की तरह उठ खड़े होने को तैयार हैं, या फिर पुश्त दर पुश्त ग़ुलामी का जुआ अपने कन्धों पर ढोते जाने को स्वीकार कर चुके हैं।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, ातगंज, लखनऊ-226006